आज की कविता

सपादन
प्रभात मित्तल

पश्यन्ती द्वारा प्रकाशित

एकमात्र वितरक   सभावना प्रकाशन, रेवतीकुंज, हापुड़ 245101
आज की कविता   पश्यन्ती   प्रथम सस्करण-1979   आवरण
विभासदास   पिछला आवरण व रेखाकन   तीन चार   नरेन्द्र जैन,
रेखाकन एक दो   भाऊसमथ   प्रकाशक   पश्यन्ती, प्रेमभवन, रलवे राड,
हापुड 245101   मुद्रक   प्रगति प्रिण्टस, दिल्ली 32   मूल्य   35 00 रुपये।

AAJ KI KAVITA a collection of poems of contemporary poets edited by Prabhat Mittal first edition 1979 Rs 35 00

क्रम

खंड एक

खंड दो

खंड तीन

खंड चार विचार

क्रान्तिकारी चेतना की वाहक
नयी कवि पीढ़ी के लिये

यहा वह कविता होनी चाहिए जिसकी तलाश हम करते हैं तेजाब की तरह हाथों के श्रम से घिसी पसीने और धुएं में भीगी वनों और पेशाब की गंध लिये उन पेशों के विविध रंगों से रंगी जिनसे हम जीवनयापन करते हैं। ऐसी कविता जो हमारे पहने गए कपड़ों की तरह अशुद्ध हो दाल के धब्बे लगी लज्जाजनक आचरण से गंदे हमारे शरीरों की तरह हमारी झुर्रियों और रतजगों और सपनों निरीक्षणों और भविष्यवाणियों प्यार और नफरत की घोषणाओं दस्तावेजों की तरह।
वे जो बाजारू ढर्रे स्वाद से बचते हैं बर्फ पर मुंह के बल जा गिरेंगे।

पाब्लो नेरूदा

आज की कविता

खंड एक
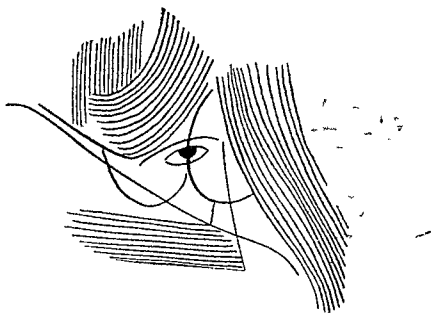
सुल्तान अहमद
उदय प्रकाश
अनिल जनविजय
सुधीर सक्सेना
राजकुमार गौतम
अचल वाजपेयी
गगन गिल
दिलीप कुमार बनर्जी
राजा खुगशाल
स्वप्निल
प्रताप सिंह

मुझे टूट पडना है
अधकार पर ?

अस्पष्टवाणी का अधकार
हर बार
पराजित किया गया है
उद्दीप्त शब्दो की
तल्ख किरणो से
ठहरो
मत बोलो
अनिश्चय की वाणी
लाओ ! वसुला मुझे दे दो
सिफ
काट छाट ही नही करनी है
मुझे अपने आप म
बल्कि तराशी हुई
प्रकाशित निजता का
विस्फोटक
पूणता से भरना है। □

मशाल जिन्दा है

अपने ही एकान्त म
सोया हुआ आदमी
दीवारो स टकराकर
उखडी हुई सास बन जाता है।
खरोच तक नही आती दीवार म
एक भयावह चुप्पी
घेरती है आकाश को
खुश होता है अँधेरा
सन्नाटे का सायरन
कह जाता है सबके कान म—

सब मशाले मर गई है
जाओ ! अँधेरे से समझौता कर लो

ठीक तभी
एक ईमानदार आदमी
दौड जाता है हाथ मे
सुलगता हुआ दिमाग लिए
अपने सहभावताओ की खोज मे
उसकी आखो मे चमकती है
एक सुनहली उम्मीद
कि इनक समूह की इकाई
अपनी अपराजय शक्ति मे
जब भी टकरायगी
अतिम निण य के
निश्चयात्मक हुलास मे
दीवारें टूट जायेंगी ।

लोग महसूस कर रहे है
आकाश को घेरती
भयावह चुप्पी मे
कही दरार पड गई है
स नाटे का सायरन
टूटकर बिखर गया है । □

जगल के खिलाफ

कूटती जा रही है
एक भयावह चक्की
भीतर से आदमी को ।
जगल की जरूरत है
आदमी
औज़ार बनाय जायगे ।

चीजों का
यथावत एहसास
जगल के खिलाफ
प्रारभिक कार्यवाही थी।

आत्मनिर्णय के
सकटापन्न क्षणो मे
उग आते हैं मस्तिष्क मे
नागफनी के काटे
विद्ध रेशों का रक्तस्राव
आंखो की
कोटर मे होता है।
धुधला जाती है दृष्टि।

आहत क्षणो मे
अकेले भी होते है
अकेले और उदास
जगल के खिलाफ, पर
कुल्हाडी
और भी मजबूती से
सध जाती है
हाथो म।
इतनी कम क्षमता
और
इतना अधिक क्षरण
ढोते हुए भी
अजेय है
आदमी बने रहने की ज़िद। □

तुम्हारी आदत

विपमूल
अपने ही भीतर ढूढना

और फिर भीखना
कि बहुत दद है
आदत है तुम्हारी
वई ज मो से।

झझटा से बचने के लिए
हर बार अपराधा के
खतरनाक मुकाम पर
उँगलिया धरने से
कतराते रह हो तुम।

मिथ्या पापवाधो म
कूट चुके हो
तुम इतना अधिक सीना
कि उसके भीतर
किसी विश्वास का जीना
मुहाल है।

तुम
फसलो पर जीत रहे हा
फसलो से
घणा करत हुए
फसलो के लिए
कोई भी युद्ध
तुम्ह नागवार गुजरता रहा है
इसलिए
फसलें छीनी जाती रही है
और तुम
पीले पहाडा पर
फूल चढाते रहे हो। □

आखिर धूप सुरजा तो है नही मालिक,
जिसकी कमीज़ आप गुस्से मे फाड दें और
जिसकी काली पीठ पर
अपनी चिलमची के गुल भाड दे

धूप सुरजा नही है मालिक
जिसे आप अपनी बैठक मे उँकड बैठा कर
गरियात रह
और पीटते रह

और रग
रग आप के चाकर नही है सरकार
जा आपका लिहाज करे
हुक्का भर लाएँ, सलाम बजाएँ
आपकी डयोढीदारी करें

आपके बनिहारो के बच्चे नही है ये
भोले भोले रग
जो आपको देख कर
अपने अपने ओसारा मे छुप जाय

इन सब पर नाहक ही बिगड कर
अपना खून जला रहे ह आप
बे बात की बात बडबडा रह है आप

आखिर जेठ की धूप म
आँच तो रहेगी ही मालिक
आखिर हवा मे धूल धक्कड
तिनका-पत्ता तो होगा ही
आपके सामने
किसनिया की तरह खडी ता नही रहगी हवा
सिर झुकाए अदब से
चुपचाप

मालिक यह धूप है
जठ की असल
जैसे-जैसे सूरज चढ़ेगा और धरती घूमेगी
यह और तपतपाएगी
गम लाल लोहे की तरह
और मोम की तरह चुएँगे आप

भुलबुनाएँगे
बिलबिलाएँगे आप
कितना ही अगाछा लगा लें सरकार

और हवा
इसके मन की बात मत पूछिए मालिक
जितना ही आप गुम्माएँगे
उतना ही सिर पर दौड़ेगी कंधी-माटी मेटती हुई
आपकी कोई बात अगर इसके कलेजे लगी
तो मत पूछिए फिर सरकार
हवा बिगड़ उठती है तो कहर ढाती है
कंगूरे, गुम्बद, किले सब जिगर डालती है
जहाजों को गेंद की तरह उछालती है
नदियों को फुहार बना देती है
तिनगी को बड़वागिन

आप तो फिर क्या हैं मालिक !
फूस की तरह उड़ेंगे अधर में
पटकनी खाएँगे खपरैलों में
बेपद अलग हो जाएँगे
और नीचे धरती पर
इत्ते सारे—इत्ते सारे
रंग सब के सब
आपका मज़ाक बनाएँगे। □

हाल चाल

कैसे हो भाई तुम
जीवन दास ?
आते-जाते यहाँ-वहाँ
रोज़ दिख जाते हो
कैसे हो, कुशल मंगल
राजी-खुशी तो है ?

कैसी है राजी की खासी
मंगल के लकवे में
क्या तरक्की है ?
सब ठीक-ठाक तो है ?

कैसी है तुम्हारी धुआँ देती
आग उगलती बीवी
कितना आँसू ढरकाती है
कितने दिन से बीमार है चूल्हा

रास कहाँ नही है
जीवन दास
किसकी सास मे मोर्चा खाई
करछुल नही बजती
किसकी नींद म रोटी
बिना बेले नही रह जाती
भाई जीवन दास
जीवन ही ऐसा है घर गिरस्थी का

मुझे मालूम है
तुम कहोगे—सब ठीक-ठाक है
चल रही है गाडी
लेकिन तुम्हारी हँसी
तुम्हारी खडखडिया साइकिल की

गीट जगी उगही है
तुम्हार दांत हैं इन की तरह
टके हैं

भा जीवन दास कल जियोगे दास
इस विधान में ब्रेक कस
लगाओगे
तुम जानते हो
कि आग इन्सान है
फिर पानी है
ताड़ है गदर है
कुआ है पेड़ है
इस तरह
तुम्हारी घर गिरस्थी
तुम्हारा सारा जीवन
आगे है जीवन दास

कब तक अकेले दफ्तर से
लौटोगे गजे-गुस्सैल बाप की
मेज वाली घंटी पर हाँफन भोगते
कब तक कैरियर में
खाली भोला भूखा कनस्तर
भुनाए लौटोगे

कब तक बच्चा के गाल में
खाली थपकियाँ बजाओगे
कब तक औरत को ठान-पीट कर
सुलाओगे
शहर की नीयत और
मोहल्ले के चाल चलन पर
कब तक भरोसा करोगे
जीवन दास ?

कब तक

आखिर कब तक
यू खोए-लुट
थके रुआसे रहोगे ?

ये अकेले का सफर नही है
जीवन दास
तुम अपनी साइकिल के
अकेले अनोखे सवार नही हो
जीवन दास

जीवन दास,
जरा एक बार
ठीक से
सोच कर तो देखो □

चीजें

वहा एक-दूसरे के करीब रखी चीजे
इसी तरह रखी रहेगी अपनी स्मृति मे डूबी
अँधेरा चाट जाएगा धीरे धीरे इन्ह
आने वाले दिना की धूल
जमती रहेगी उनके होठो-आखो पर
लौटते दूर जाते जूतो की आवाज म
उदास होती जाती चीजें
किसे पुकारना चाहेगी फिर
हम मे से कौन होगा जिसे बचा कर
रखना चाहगी वे अपन पास रूमाल की तरह
अपने अतिम समय तक

क्या हमारी दोपहर की बातचीत म
छूटी हुई उन चीजो का जिक्र रहगा कभी
जिन्ह पिछले दिना के साथ हम त्याग आए है

पीछे, पुरानी जगहो म
क्या उन चीज़ो के बारे म हम कभी शुरू से बात
करना चाहेंगे और उदास होना चाहेंगे कभी

क्या हम नष्ट होती पिछली चीज़ो की
घनिष्ठता म अपनी राय या कथ छोड़ेंगे
और पीठ टिका लेंगे दीवाल के साथ किसी दिन

चीज़ें, मसलन मकान की तस्वीर
हैंगर म भूलते दोस्त के कपड़े
किताबें—जो पढ़ी नही जा सकी कभी भी
खाली समय म

समय के भीतर से होकर बाहर चला जाता है
इतनी आसानी से हमारा शरीर—ठोस-साबुत शरीर
जैसे खुले दरवाज़े से हम शालीनता म कधे
भुका कर बाहर निकल गये हो

क्या समय दीवार है
जिसकी कोई भी खिड़की खोली जा सकती है
इच्छा भर से
और बाहर छलांग लगाई जा सकती है
इस तरह साफ साफ
हँसते हुए—बिना चोट के □

बढ़ई की लड़की

हरे मैदान मे
खेलते है
पेड़
गेंद फेंक कर एक-दूसरे की
नगी हथेलियो मे।

सितार की तरह बजते है
चिडियो के उल्लास मे
लदे हुए पेड ।

कही भी न जाते हुए
विदा मागते
हाथ हिलाते हँसते है
ह -ह -ह
मिजाज पूछते ।

इन पेडो की छाँह मे
चुप थकी बैठी
बढई की
लडकी तेरी उम्र
क्या होगी इस वक्त ?

इस वक्त
जब पेड चुप चुप
एक दूसरे की
जडो को छू रहे है ।

इस वक्त,
जब जानना चाहत है
पेड—बढई की लडकी
तेरे सपनो म कौन होगा ?
कौन सा पेड ?

अपनी उत्तेजना मे
पत्तियाँ झाड कर
अपनी छाल उतार कर
तुझे रोटियाँ देता
तेरी उम्र क्या होगी
इस वक्त
बढई की नन्ही सी
लडकी ? □

अनिल जनविजय

मैं कविता का अहसानमन्द हूँ

यदि
अन्याय के
प्रतिकारस्वरूप
तनती है कविता
यदि
किसी आने वाले तूफान की
अग्रदूत
बनती है कविता,
तो—मैं कविता का अहसानमन्द हूँ।

अधजली/अधबुझी
आदम की
बीडी का
बेरोजगारी से त्रस्त
थकी/युवा-पीढ़ी का
आक्रोशमयी स्वर बन
जलती है कविता
तो—मैं कविता का अहसानमन्द हूँ।

जिनकी
जिन्दगी मशीन है
भूख/कुलचिह्न है
रोटी/एक जुगाड है
खोखली पुकार है
उनकी
गुहार बन
गरजती है कविता
तो—मैं कविता का अहसानमन्द हूँ।

उनके है
जिनके पास रक्तकमल है
तुम्हारा रक्तकमल ।

वे
फेंकते है सिक्के तुम्ह
सेकते है भट्टी पर
भूनते हैं मांस—बोटी टूगते है
शेष बचे रक्त से रक्तकमल उगाते है
औरत लाते है और
फिर सिक्के गिराते है ।

समझो तुम !
यह चाल है उनकी
फस मत जाना-सावधान रहना
सिक्के मत उठाना
नही तो वे फिर तुम्हारा रक्त मांगेंगे
नया रक्तकमल उगाने के लिए।

अब
एक काम करो तुम
चाकू बन जाओ
तेजी से जाओ—वार करो
जड सहित रक्तकमल काट लाओ
तुम्हारा रक्तकमल। □

तुम भी आओ

अपने को खतरनाक घोषित
करते हुए
नारे उछालना/मैंने नही सीखा

मैंने नहीं सीखा
यूकिलिप्टस का पेड़ हो जाना
जब जंगल के/अन्य सारे पेड़
नीम और बबूल बन
महामारी का विरोध कर रहे हों।

मैं नदी नहीं हो सका
बढ़ी हुई, चढ़ी हुई/आवेग में, उन्माद में
प्रलय बन मढ़ी हुई
तालाब बना रहा/या फिर झील
ठण्डी-गर्म रातों को।

मैंने/पहाड़ बनने की भी/कोई
कोशिश नहीं की
कठिन था मेरे लिए/सूरज को
रोज़-रोज़ डूबते देखना/और फिर
सारी रात/सुबह की प्रतीक्षा
करते रहना/आकाश टटोलते हुए।

मैं/ज़मीन बना रहा
नीम और बबूल उगाता रहा
तालाब और झील के पानी को
उबालता रहा
सूरज बनाता रहा/अपने ही बीच
निरन्तर रोशनी के लिये।

आओ
तुम भी
ज़मीन बन जाओ। ☐

पिता के नाम

मेरे पिता
मुझे याद है
मेरे बचपन के दिन।

मैं
गया करता था
तुम्हारे नर्म, मुलायम
रेशमी काले बालों में
हाथ, पकती हुई रातों रातों में
अपना दामन हरा रखता था बार बार।

मैं
गिनाता था बराबर
तुम्हारे बाल बाल
सफेद क्या नहीं हैं वे
गटापराज की तरह
रुई की तरह
बर्फ की तरह
सफेद।

मैं
बार-बार
तुमसे पूछा करता था
बाबा ! तुम सदाबहारों क्यों होगे ?
और तुम
मुस्करा भर देते थे धीरे से
किसी मीठी कल्पना में खोकर।

या फिर
माँ को बुलाकर
मेरा प्रश्न दोहरा देते थे
हजारों
घंटियों के बजने की
आवाज सी उसकी हँसी से
गूंजने लगती थी चारों दिशाएँ परस्पर।

मुझे याद है
तुम मुझे गोद में भरकर

सुधीर सक्सेना

सूरज उगने से पहले

मा के लिये एक कविता

अभी-अभी लौटा हूँ, माँ !
बेहद सर्दी है
मगर तुम थी कि
बाहर खडी हुई
व्याकुल धडकनो मे
मेरे नाम की गुहार लगाती हुई
परेशान, रात और ठडक म भीगती हुई।
सडक का छोर तुम्हारी
आखो मे डबडबा रहा था और
तुम थी—मौन खडी
होठो ही होठो मे मनौतियाँ बुदबुदाती।

नाराज मत हो माँ !
कभी मैं तुम्हारा ही अश था
तुम्हारी कोख मे तिल तिल कर बढता
और मासूम धडकनो मे
फुसफुसाता हुआ
तुम्हारे ही रक्त माँस और मज्जा से गढा
यथार्थ मे रूपायित एक विधान।

मैं, शैशव मे तुम्हारी ही लोरियो के स्पर्श
से नीद को पहचानता और
अपने होठो और नन्हे-नन्हे हाथो
से तुम्हारे वक्ष की मीठी तरलता
और तुम्हारे अस्तित्व को महसूसता।
तब तुम्हारे हृदय की कुलाच

दुबके हुए मेरे चेहरे पर
अपनी नम-गम उँगलिया फेरती।

मैं धीरे धीरे बडा हुआ
इर्दगिर्द की हवा धूप और रोशनी को
फेफडो म भरता हुआ।
बचपन मे तुम्हारे मुह से
किस्से और कहानिया सुनते
मैंने जाना—
एक बहुत बडी चीज है सच्चाई
एक बहुत बडी चीज है ईमानदारी
एक बहुत बडी चीज है जिजीविषा।
तब मैं एक लोहे की तरह था
और ये चीजे एक अदृश्य
लेकिन शक्तिशाली चुम्बक की मानिंद
जो मुझे खीचती थी
आमत्रण मे अपनी विशाल बाहें फैलाती हुई।

इस चुम्बक का आभास
तुम्हारी ही देन था, माँ!
मैं मत्रमुग्ध ताकता रहता
आकाश
जहा कभी कभार सतरगा मे बनी फुलझडी
खिल उठती
और मैं सोचता रह जाता
आखिर, क्या है यह मेरी पकड से दूर?

मा!
अभी भी याद है मुझे
मोरध्वज की कहानी
जो आरे से चीर दिया गया [illegible]
शुन शेप की कथा
जो कौडिया के मोल [illegible]
यज्ञ मे बलि होने [illegible]

और अभिमन्यु का मंच।
रथ के पहिया मे जिसकी
जिजीविषा फूट पडी थी
बड़-बड़ अक्षौहिणी सेनाओ और
सजे बिजे आयुधो को चमत्कृत करती हुई।

अभी भी ऐसा ही है मा !
मारध्वज को अभी भी आरा चीर रहा है
यूप से बधा खडा है शुन शेप
अभिम यु अभी भी टूटा पहिया
लिये जूझ रहा है
तार-तार वस्त्रो मे
और उसके ललाट पर पसीना
चमक रहा है।
तब भी सोचता था
और आज भी यही
कि वक्त पर क्यो नही लौट पाए थे
गाँडीवधारी अर्जुन।

और माँ !
वह ईसा
जिसे काँटो का ताज पहना
सलीब पर लटका दिया गया था
आज भी वही लटका है
आँसू
अभी भी उसके गालो पर ढुलक रहे है।
अभी भी
वह जिनासा अनबुझी है माँ !
एक प्यास की तरह
जो बरसो से प्यासी है
एक घूट पानी की तलाश म
चप्पे चप्पे भटकती हुई।

ऐसा कब तक होता रहेगा माँ !
आखिर कब आदमी के होठ

अपने पूरे आकार म खिलेंगे
आदमी की भलाई के मत्र उच्चारते हुए
और शोषण व अन्याय के खिलाफ
सुर्ख अगार की तरह तमतमाते हुए
होठ।

देखा !

श्रमिक है जो
भट्टिया म अपने हाडमास का इधन
पेट म पाव दिये
कथरी पर
गुडीमुडी लेटे है।
प्रतिकार म गर उनकी मुट्ठिया
न बधें, तो क्या करें ?
बजर धरती म डालते है
जो अपने लहू पसीने की खाद
और कर्ज म ही ताउम्र खटते है।
सुलगते अलाव स, गर
वे मशालें न सुलगाये
तो क्या करे ?

तुम्ही सोचो, माँ !
धरती के बेटे-बेटिया क पास
हज़ार हज़ार साल बाद भी
क्या नही है नाज और कपडे ?
मुझे माफ करना, मा !
शायद सोचा होगा तुमने
कि मैं 'राजा बेटा' बनूगा
और एक रोज लाऊँगा
चाद सी बहू
गोद मे पोता खिलाने का भी
स्वप्न तुम्हारा रहा होगा।

ऐसा कुछ नही हुआ, मा !
लेकिन क्या तुम मुझे माफ नही करोगी ?

अब
तुम्हारे बालो म चाँदी
पडने लगी है।
चेहरे पर चुपचाप उतरन लगी हैं
एक एक कर
कई-कई झुर्रियाँ।
तुम्हारी डाँट फटकार म होती है, माँ!
सतान के अमगल की आशका
और मगल की चिर कामना।
बिजलियो के टूट पडने का
कोई समय जो नही होता।

लेकिन तुम तो भगवान को मानती हो।
शायद!
तो यही मनाओ, माँ!
बिजलिया वही टूटें
जहाँ अमगलकारी शक्तियो का वास है
ताकि लोगो की आँखें
सदियो तक चमचमाती रह।
होठो से मुस्कान और
निर्भीक शब्दो के
फूल झरते रह और
उनके हाथ
पत्थरो से इमारतें
रेशो से कपडे
धरती से अनाज
गढते बुनते और उगाते रह।
कही, किसी भी सराय, मकान या अस्पताल मे
बच्चे बिना हाठो के न जन्मे
वे अधकार से प्रकाश के लोक मे आयें
खुशी से किलकारी मारते
और हाथ पाँव उछालते हुए।

मा! रात जब शहर

चुप्पी के घोंसले म दुबक जाता है
और स्वप्न आढ लता है
तुम व्याकुलता से मेरे
पदचाप की बाट जाहती हो
फिर चूल्हा गर्माकर
रोटिया सेंकती हो।
विश्वास करो मां !
मैं ऐसा काम नहीं कर रहा
कि तुम्हे पछताना पडे
और तुम्हारी आखो से
पीडा तरल होकर बहे।
फिलहाल, सो जाओ, मां !
इस वक्त रात है
अलस्सुबह जगना है।

कितना अच्छा लगता है
भोर के ललछौंहे
बेदाग सूरज को ताकना
जब ताजी हवा
घर-आँगन बुहारती है
और चिडियाँ तक
कूजती हुई
काम पर निकल जाती हैं।
सो जाओ, मा !
सुबह होने ही वाली है
और हमे
सूरज उगने के पहले ही जाग लेना है। □

राजकुमार गौतम

नक्शों की कैद

दूर तक फैले ऊबड़ खाबड़ विस्तार तक
उन्होंने एक सुन्दर देह का नक्शा टाँक कर
मुझसे कहा, 'यह तुम्हारा देश है'
और मुझे उस नक्शे के फ्रेम में
कील की तरह जड़ दिया

मेरे कदमों का नुकीलापन
अपनी जड़ चेतना और
जिजीविषा की परछाइं तक
लगातार कैद होता रहा

और दूर से एक आवाज़ चिल्लाई
'तुम कैदी हो और यह सुन्दर देह कैदघर'
और मैं उसके साथ बलात्कार करने लगा
पर बलात्कार में मुझे
उस देह में एक भी सच्चाई नहीं मिली
और मैं परास्त होता रहा

मैं अपने पैरों से वनमान को रौंदता रहा
और मेरे पैर अन्तहीन दलदल में धँसते गये
तब उन्होंने मुझे गरदन से पकड़ लिया
और घूरकर बोले, यातना के बाद संघर्ष जन्मता है
और संघर्ष एतिहासिक भ्रम है
इसे तुम, अपनी विजय मत समझो
मुझे फिर उन्होंने, एक पालतू मुर्गे की तरह
दरबे में बन्द कर दिया

मैं कविताएँ लिखने लगा
और दूर से एक आवाज़ चिल्लाई

'विचार अनुभव नही हो सकते'
और मैं फ्रेम म जडा हुआ फिर
तडफडाने लगा □

नवीनीकरण बनाम जरूरत

आओ ! लडाई फिर शुरू करे
और उसे वापस खीचकर
उन चेहरा तक ले जायें
जिन पर टँका सूरज
पीछे छूट गया था !
उन गोदामो तक ले जाये
जिनके चौकीदारो की
हत्या करने के बाद भी
जिनमे ताला ही लगा रहा था !
उन चेहरो तक ले जाय
जिनकी लाशा का ढोते-ढोते हम
ससद तक ल गये थे
और हम भी जहा जाकर
मुर्दा हो गये थे !
निर्माणाधीन याजना की
उस बैठक तक ले जायें
जहा बैठा हुआ कलुवा चमार
अपना कार गुदा बगला बनाय जाने की
बात सोच रहा था और
स्वीकृति मत म धडाधड
हाथ खडे किये जा रहा था !
उस लाल पोस्टर तक ले जाय
जिन्हे सफेदी म तब्दील कराने के लिए हमने
लाल प्रतिनिधि को जिता दिया था
और पोस्टर का रग
और भी सुर्ख हो गया था !

हत्या की उस भयानक रात तक ले जायें
जिसमे हमसे पहले ही
असली हत्यारा फरार हो गया था
और नकली हत्यारा को पकडने वाला कानून
उसने ससद की गडगडाहट मे
पारित करा दिया था ।
उस कविता तक ले जायें
जिसके जरिये हम नारी देह के
'सुख' से निकले थे और
जहाँ अँधेरे मे गोलियाँ चल रही थी
बस ! दो चीजें सुनाई पडती थी
गोली की बौछार और
हार ! हार !! हार !!!
आओ—
आओ ! इस लडाई को फिर पीछे धकेलें
और एक बार फिर से
उस समय की जरूरता तक ले जायें
जब हमने यह लडाई शुरू की थी । □

मैं तो वहाँ भी गया था माँ !

मैं तो वहा भी गया था माँ !
जहाँ हर आँख
अपन आँसू रोती है पर
वहाँ तो हर आँसू म
एक आँख उग रही थी माँ !

मैं तो वहाँ भी गया था माँ !
जहाँ जिस्म और बाट बिकत हैं
और वहाँ —र जिस्म/और
मतपत्र पाराजा था/बस !
पता ही नही चलता था

किसने किसको भोगा था
पर भूख वहा
दोना के पेट मे उग रही थी मा ।

मैं तो वहा भी गया था मा ।
जहा मेरे बारे मे
सोचा जाता है
योजनाएँ बनाई जाती हैं
वहा अनगिनत कागजो के ढेर थे
और/कागज के हर जिस्म पर
मेरी खुशहाली के आकडे/पर
वहाँ मेरा नाम तो था ही नही मा ।

मैं तो वहाँ भी गया था मा ।
जहाँ मेरा बचपन, जवानी और बुढापा बीता था
पर वहा निराला अभी भी भूखे खडे थे
और मुक्तिबोध का गैर इलाज़
धूमिल हुआ पडा था
प्रेमचन्द अपना फटा जूता गँठवा रहे थे
और गाधीजी अपने कमजोर हाथो को
उठा उठाकर रामराज की बातें कर रहे थे/पर
वहाँ श्रोता तो एक भी नही था मा ।

मैं तो वहाँ भी गया था मा ।
वहाँ भी ।
वहा भी ।।

□

अचल वाजपेयी

शैतानियत

दिन भर मैं फाइलें उलटता हूँ
सुबह शाम भटकता हूँ
बदबूदार गलियाँ
मुर्दा चूहे सी गँधाती सड़कें
रात भर भविष्य की
अनागत तुष्टि का
श्वेत कफन बुनता हूँ

वे लोग
मुझे जुतियायें गलियायें
सरेआम
मेरे मा बाप पर
लानत भेजें
मुझे एक खुशनुमा चेहरा
जिंदा रखना है
जिसे शैतानियत की
सही पहचान हो चुकी है
उसकी मा जगज्जननी
मेरी माँ मरी हुई मछली
मछली फेंक देता हूँ कूड़े पर
उस जगत माता को प्रणाम
अवकाश के दिन भा दिन चढ़े तक □

धूप के धान

तुम जो धूप में
धान बोते हो

गर्व से निकल गये
पीछे मुडो और देखो
तुम, कीच भर पानी मे
गहरे धँस चुके हो
और धान ?
उन्ह धूप ने
एक काले रजिस्टर पर
टाक दिया है □

सीढियाँ

सीढिया ढो कर ही
एक अपाहिज पीढी
स्वग जा पहुँचती है
सुविधाजीवी होने के बाद ही
तेज कविताओ पर
चर्चा सुरु देता है

शब्द अँधे कुए म
झाक कर
धब्बेदार लोग उदासी पर
आयोजित करते हैं
धारदार बहस □

शिनाख्त

यह मेरी दुनिया का आदमी है
वह तुम्हारी दुनिया का आदमी है
वह किसी की दुनिया का
आदमी नही है

नहीं, यह आदमी नहीं है
यह कोई सोने की ईंट है
जो ऐय्याश मसनदों पर
ऊँचे ऊँचे सीनों पर
इतिहास में बदस्तूर
धुएँ के स्तनों पर टिकी है
जिसके ज्ञान में
अनिवार्य दान है
सम्प्रदायवादी भोगा हुआ यथार्थ
कुंठा और संत्रास जैसे
परन्तु नया का प्रमाण

नागरिक चिंतन के
तमगे लटकाये वह
कई बार करीब से गुजरा है
आवाजों की धमक उठाती है
यह अलग बात है
उसकी परछाईं तक देखने में
जिस्म में भर जाती है
एक नामाकूल चिपचिपाहट
एक बेवजह गिलगिलाहट
तब वह संपूर्ण संवेदना के बावजूद
अपनी शिनाख्त खो देता है □

नाबदान के कीड़े

कीड़े नाबदान के
पहले कुछ झिझके सहमे
बाद में अकड़कर
सड़क पर आ गये

अपेक्षाकृत सम्पन्न राहगीर
विस्मय से घूरने लगे

कीडे घृणा से मुंह बिसूरने लगे
पेशेवर कुर्सियां हिली
कुर्सियो की कीलें
ऐय्याश चेहरो के
गुप्त देशो मे धँसी
रद्दी कागज़ के टोकरे
निर्बाध कीडो पर थूकने लगे
किन्तु वे किसी अघड से
उनके मालिको पर टूटने लगे
हर कीडा जैसे एक प्रश्न था
गदगी घुटन और गटर
जिसके थे आदिम समाधान
किन्तु अब वह प्रश्न
समाधान की परिधि से बाहर था
चेहरे पर आक्रोश भरा स्वर था

वे खडित कर रहे थे
मखमली परिशिष्ट
तोड रहे थे
भीमकाय ग्रथो की जिल्दें
गले हुये पृष्ठो का काफिला
गुज़र गया था
यानी बाकी इतिहास का जलूस
पूरे रोब दाब से निकल गया था □

दो कविताएँ

१

उस बार
जब जब सबध की खोज
प्रारम्भ की थी
हम दोनो के मध्य
एक प्रज्वलित रेत नदी
दूर तक बही थी

अतरग घुटे मरण का हताश
उमडते मेल का
भयावह अहगाम
उम्र की आच म विपन्नता
ऋतुआ का सम्पूण अमृत
हमारे बीच
वधिक मुद्रा म
अनागवत खडा था □

२

आगामी रात फिर मिलूगा
गुलाबी भोर के धुधलके म
कोई सम्पूण तीव्रता से बह गया

भोर की पहली आस
चिडिया का नशीला सगीत
मजदूरी खोजते हाथ
दफ्तर दौडती साइकिलें
बस्ता लटकाये स्कूली बच्चे
आखा म चुभत इद्रधनुष
नितात अथहीन
रात के नीले फूल का विष
प्रकाश चीवर पहने
उनकी आत्माओ मे उतरता रहा

स्पष्ट था, वह साँझ थी
जिंदगी की खिडकी
अभावो की नदी के
गभ मे खुली थी

जो कुछ था वह
एक ठडी चट्टान के सीने पर
उदास लेट गया था □

सलीब पर चढने से पहले

शहर के सबसे अधिक
बदनाम चौराहे पर
कल फिर उन्होने एक
मसीहा को टांग दिया
पहले से रक्त सनी सलीब पर ।

आज उनकी कीलो को
व्यवस्था परिवतन की खातिर
नये मसीहा की जरूरत है
और सलीब पर चढने की बारी
आज मेरी है ।

तुम्हें
जिसे उत्सुकता थी
यहाँ का हाल जानने की
यह सदेश भेज रही हूँ
सलीब तक का फासला
तय करते हुए ।

यहाँ
जहाँ थोडी ही देर बाद मुझे
सूली पर चढाया जायेगा
माहौल बहुत अजीब है

वे सब
मेरी देह मे
कीलें गाडने की बजाय
एक दूसरे के पाँवों मे

नाले ठानने म व्यस्त है
क्योंकि उन्हें
बहुत दूर तक मेरा
पीछा करना है

इन्तजाम पूरा है !

अब वे किसी भी हालत म मुझे
तुम्हारे पास
सशरीर नहीं आने देंगे
तीन दिन तो क्या
तीन युगा पश्चात भी नहीं !

वे सब
दौड लगाने के लिये
तैयार हो रहे हैं
और मुझे
रक्त सनी सलीब देखकर
हसी आ रही है ! □

ठहराव के विरुद्ध

तुम्हारे और मेरे बीच
सिफ एक पीली बत्ती नहीं
ठहरी हुई नदी भी है
और मैं
कुछ देर के लिये सही
लेकिन कैसे मिटा दू
सडक के माथे से
बबर घटनाओ को
कैसे झुठला दू

कर्फ्यू से स्तब्ध हो गये
उस खामोश शहर को

जबकि इतनी बदहवास यात्राओं के बाद
मैं इतनी सरल नहीं रह गयी
कि अनंत काल तक करती रहूँ
हरी बत्ती की प्रतीक्षा
देखती रहूँ हथेली पर
मंद उगते संकल्पों को

पर इतने थके-हारे जिस्म से
इस काले पानी को पार करने का
कैसे करूँ दंभ
जबकि खराब होने के बावजूद
बत्ती समेटे है अपने में
लाल हरे होने की
तमाम संभावनायें

दरअसल
तुम्हारे और मेरे बीच
एक पीली बत्ती और
ठहरी हुई नदी ही नहीं
कुछ खतरनाक संभावनायें भी हैं
और
उपलब्धियों के नाम पर
और कुछ न भी सही
बारूद से छलनी हुए
लड़खड़ाते पाँवों की कतार तो है। □

महज एक मुलाकात के लिये

जले हुए पाँवों को
एकटक देखने के साथ साथ

मैं सोचती हूँ
अब सब कुछ सोचना
बद कर दूँ
और इस बुढा गए सूरज को
कधों से उतार कर
दूर घाटी मे पटक कर
तमाशा देखूँ !

शीशे की आँखों से
देखे प्रतिबिंबो
और कागजी फूलो की
गमक को भुठलाकर
घुटनो तक घिसटते सूरज के
साथ साथ गक हो जाऊँ

कि अब मैं
शाम के उस मुहाने पर हूँ
जहाँ बुढाया सूरज मुझ से
सभलता नही
और उसे कभी न डूबने देने का मेरा दभ
हारता गया है

मैं सोचती हूँ
महज एक सुबात के लिए
सूरज के सदभ मे
कुछ भी सोचना बद कर दू
और धीरे धीरे अपन को तैयार करूँ
बन्ती आती सद रात के लिए
नसो मे उबलते लावे के बावजूद ! □

शहर लौटते हुए

शहर लौटते हुए
मैंने सोचा

और चाहे सब बदल गया हो
गली के किनारे का गुलमोहर
जरूर वैसा ही होगा

पहुँचकर देखा
सिर्फ पेड़ बीत चुका था ! □

उदासी

मैंने सोचा—
आज पेड आकाश के गले लग के रोये है
अच्छा हुआ, गुबार निकल गया
अब सहज प्रसन्न होंगे

मैंने देखा—
पेडो ने उदासी में
जमीन छोड दी थी
वे किसी वक्त भी गिर सकते थे
मैंने सुनी—
पेडो के एकाएक तिडतिडाकर गिरने
और धरती के अनाथ होकर
रोने की आवाजें

मैंने सोचा—
उदासी क्या ऐसी भी होती है ! □

दिलीप कुमार बनर्जी

आज फिर

आज भी मैं उतने ही अँधेरे म घिरा हूँ
और कमर इतनी झुक गयी है
कि चतुष्पद सी रेंगने लगी है भूख।

मेरे लिए आज फिर एक बैल
बाँध दिया गया है
उस मचान के नीचे
जिसके ऊपर आज भी
खून से लथपथ एक सूरज उगा था
और ढल गया था लहू-लुहान।

आज भी शिकारी की आँखों म चमक है
आज भी मचान के ऊपर वह सुरक्षित है
विधाता की तरह
और उसे यकीन है कि
आज फिर मैं उस बैल को दबोच लूँगा
और आज फिर उसका निशाना नहीं चूकेगा।

किन्तु आज फिर एक बार
मैं उस मचान तक उछलूँगा। □

चुप्पी

शनै शनै / आग लगी।

धुआँ नहीं
ताप नहीं
लोलिहान शिखा नहीं
चुप चुप

लोग जले
जल मर
पर आग दिखी नही ।

दानै दानै / आग बढी ।

दुकानो म
मकानो म
खेता और खलिहानो म
आग बढी
कब बढी ?
कस बढी ?
नही किसी क ध्यान म ।

आग यह कराल है
जन गण बहाल है
चल रहे/चुप चुप
मर रहे/चुप चुप
लोग चुप, कमाल है । □

आदिम नग्नता

दिलचस्पी नही मुझे इस सभ्यता क आडम्बर स
आदिम नग्नता ही जिन्दगी है मरी ।

सभ्यता क प्रथम प्रभात स
सभ्यता की प्रखर किरण ने रुलाया जिनको
और समर्पित किया
शताब्दी क हाथो, किस्मत के सहारे
मैं उस वश का
आखिरी कलक हूँ ।
ढो रहा हूँ मैं
धम और किस्मत का
अतिम विष !

मेरी आँखो के सामने से रंगीन सपने का पर्दा
हट गया है
मैं स्पष्ट देख रहा हूँ
मानव सभ्यता के इतिहास की कई शताब्दिया ने
मुझे वही रख छोडा है
जहाँ से चले थे मेरे पूर्वज ।
अब भी इन हाथो मे
नुकीले पत्थरो के सिवा कुछ भी नही
फिर भी मैं कोशिश कर रहा हूँ
सभ्य बबर खूखार जानवरो मे आत्मरक्षा की ।

अपने बाद के लोगो को सौप दूगा मैं
नुकीले पत्थर
और आदिम नग्नता
अपनी पहचान के लिए ! □

कब तक ?

सिर्फ इसलिए कि तुमने स्वीकृति नही दी है
रात्रि के अवसान को
मैं अपनी उषा को कब तक शैशव मे बाँधू ?
मेरी उषा तो इस कदर सिमट आयी है मुझ मे
कि मैं खुद बनने लगा हूँ दिन ।

आखिर कब तक मैं यह मानू
कि मुझ मे प्रकाश नही है
सिर्फ इसलिए कि तुमने स्वीकृति नही दी
मेरे दिन को ! □

खोटा सिक्का गन्दे शब्द

छी ! गन्दी बात ! ऐसा नही कहते
पिता ने कहा था

इस घर मे

मैदाना म खिची रेखाओ के बीच
लडत भिडते, हाँफत हाफत
यही पहुँचना था तो
सारी की सारी गल्तियाँ ही सही थी
सही होने की इस गलत परम्परा म

धूल धक्कड म बनत उजडते घरोंदो स निकलकर
तवे की कालिमा से पुती हुई तख्ती पर
जिस उजाले को अकित किया हमन
वह कही से भी उजाला नही है अब
कई रगो मे से एक
सफेद रग के भ्रम के अलावा

इसे कही नही पढा हमने
यह कौन से दर्जे का पाठ है कि
एक ही चूल्ह पर आश्रित
सारे कुनबे की दिशा एक नही है

एक ही दरवाजे से कइ दिशायें जाती ह
और शाम को लौट आती है
सिल्ल सकरे ओबरे मे
जिसका एक हिस्सा बुढापा है बाप का
दूसरा हिस्सा जगली घास की तरह
बढती बहिनो का
खँखारती हुई माँ का है तीसरा हिस्सा
और चौथा बडबडाते हुए भाई का

भूख प्यास स जुडी
अलग अलग रस्सियो का गुजल है घर
कहाँ पता हमने कि

धुआँरी सख्त दीवारें
रोक नही पाती रात की गहनता को
और बहुतेरी इच्छाओ के विपरीत
खीच लाती हैं अपने सपन म
मोर पख

धूप की हर भावना को खत्म करते हुए
बर्फानी हवा के झोके जीवन को जमा गये
दहका नही सके कभी

पाखो पर पडे इन्द्रधनुषी भाव से
अतिथि आते है
परियो की मनोरम गाथाओ के क्रम म
बहुत सी दुविधायें दे जाते है
सम्ब धो की जडे, पडोस म गई हुई होती है तब
आटा दाल मागने ।
यह कौन से न्जें का घर है ?

भाषा से इतनी जान पहिचान कहाँ थी तब
बहन की यह उम्र भी हमारे पास नही थी
कि आखिर आग क्या करवाना चाहता है बडप्पन
दिन भर अपने से बडो का आदर करवा के
हुक्का भरवा के । □

आने वाले समय के लिए

गन्दगीयो पर पडे हुए
गार आवरण उनटेंग/आंधी म
अनायास ही उगहकर खोलेंगे पट

बच्चो के पदचाप होठो पर
भविष्य का राग होगा/चारों ओर

एक अनुगुन्जित शब्द के आगमन की
साक्ष होगी सन्नाटे के विरुद्ध

भटकती हुई आत्माओं की
सनसनाहट होगी
और तुम में वह जज़्बात
जो ज़मीन की शान्त सतरों पर
आग की तरह भोंक देगा मुझे
यह अचानक नहीं होगा

अनाचार की अति के खिलाफ़
ज़िन्दगी की ज़मीन पर
इसी की सम्भावनायें अँकुरा रही हैं
अन्तत
यह खौलता हुआ अचानक होगा
उस समय
हवा में हथियारों की गन्ध होगी
और भीड़ के पास अपना चेहरा
तुम्हारे पास हिम्मत होगी

जिस से तुम, पत्थर की तरह
उस दिशा में फेंक दोगे मुझे
जिस दिशा में
अपनी जड़ों के बल पर
पाताल का अनुभव लिये
चुपचाप बढ़ रहे हैं पेड़। □

इतने दिनों बाद भी वह
सड़क पर नहीं आयी
ट्रैफिक की लाल बत्ती का खतरा
अब भी उसे
निस्पंद कर रहा है।
जब भी वह पाँव बढ़ाती है
उसे सायरन सुनाई पड़ता है
वह उल्टे पाँव होठों तक
लौट आती है।

आँखों के बारे में क्या कहा जाय
वह चेहरे पर होते हुए भी
अंधी भूमिका में हैं
दृश्यों को देखकर गुस्से से
लाल नहीं होतीं
जिस्म के अन्दर, गहरे धँस जाती हैं।

कायर योद्धा लड़ रहे हैं
अहिंसा का बैनर थामे
गोया कि लड़ाई कहीं नहीं होती
युद्ध की जगह
घास का मैदान होता है
मवेशी मुँह नोचा किये
टहलते रहते हैं, शाम ओ-सुबह।

सुबह वैसी ही छपी है
आसमान के कागज पर उसमें
घोषान यानी कोई खबर नहीं
विशिष्ट व्यक्तियों की [illegible]याँ
और यात्रा कार्यक्रम हैं।

बात या आग, पेड़ की त्वचा पर
सन्ध्या की तरह सुनी हुई है
यदि सुर्खि [illegible] नहीं किये गये पर

तो उन्हें भी कटने वाले
दरख्तों में गिन लिया जायेगा □

वसन्त

वसन्त आयेगा इस वीरान जंगल में
जहाँ वनस्पतियों को सिर उठाने के
जुर्म में
पूरा जंगल आग को सौंप
दिया गया था
वसन्त आयेगा दबे पाँव
हमारे तुम्हारे बीच आँखों से होता हुआ
होठों के बीच संवाद कायम करेगा
उदास उदास मौसम में
बिजली की तरह हँसी फेंक कर
वसंत सिखायेगा हमें, अंधकार से जीना।

पतझड़ का आखिरी रैजनी, बदरंग पत्ता
समय के बीच फालतू चीज की तरह
गिरने वाला है
बेआवाज़ एक ठोस शुरुआत
फूल की शक्ल में आकार
लेने लगी है।

मैंने देखा, बंजर धरती पर लोग
बढ़े आ रहे हैं
कंधे पर फावड़े और कुदाल लिये
देहाती गीत गुनगुनाते हुए
उनके सीने तने हुए हैं
बादल धीरे धीरे उफक में
उभर उठ रहे हैं
[illegible]

उनके बीच
बह रही है।

एक साथ मिलकर कई आवाज़ें
जब बोलती हैं तो
सुनने वाले के कान के परदे
छिलने लगते हैं
वे खिड़कियाँ खोलकर देखते हैं
दीवार में उगे हुए पेड़ की जड़ों से
पूरी इमारत दरक गयी है। □

विजेन्द्र

अंधकार को चीर आई कौंध अकेली

कुमार गंधर्व का गान सुनकर

रात रात भर दगा जगमा
बरसा पानी
नभ नगाड़
पर
गड़े धुप।
धाम हो गई दोहरी तिहरी
उठा उठा हाथों को
छायन
छाया।
गिरा हुआ है
झीना परदा
गहरा
दूर दूर तक
दिखता नहीं
हाथ में हाथ।

यह
जलसा है सुखकारी उनका
जिनकी पाटौर नयी है
जिनका फूस नया है।
तड़ ऽ, तड़ ऽ तड़ ऽ ड ड ड ऽ
होती कौंध जोर से
दहलान वाली
जो सोते हैं
नींद सुखों की गहरी
उनको क्या है चाहे जो हो!
कौंधा भारी
धरती को छू जाता है!

दिग जाती हैं
पडा की पुनगी, पेड, हार
एकाकी घर सून रस्त
कही कही उगि आई
पतनाना पर
कचनीली काई।

मटका पर घुडदौड मची है
गब्द गब्द को चीर रहा है
आवाजें एक सरीखी है
घर बाहर
फिर भी
अन्तर है
गहरा !
गहरा !!
गहरा !!!
पथ है बीहड
स्वर मधाना की लम्बी यात्रा है।

शब्द
जन्मत हैं
क्रियाआ स
उगम
जीवन का अनुपम कन है।
शब्दा के गहर मन म
छिपी हुई है
स्वर की महिमा
अपार !

जितना गहरा जन होता है
उतनी ही शान्ति बनी रहती है
मुख पर !
लकिन एसा कम होता है
जा बैठ बठ कर

गहरे जल मे
स्वर के छारा को
पकड़ सकें
हम !

साँस साँस का
प्रतिरोध बना है
तिनका
तन कर
खड़ा हुआ है
धारा के विरोध म
यह तनना
स्वर है
रचना का !

मैंने देखा
फिर आया चोखा धरती तक
टूटा सपना
जैसे खिल जाती है फूट
क्वार के लगत ही
मकई मे।

तार तार खिलता है
अँधियारा, छायाएँ गुम ह
हम दोनो
कह लेत है अपनी अपनी
बातें
हलका होता है मन !

टूट टूट कर
फिर से जुड़ जात है धाग
किरचें शीश की !
छोटी छोटी बातें
जीवन की

बन जाती है क्या राम की !
चुन लता है कवि
उसका
अपनी मधा स ।

स्वर के पीछे
छिपी हुई है
अर्थों ध्वनियो, सकेतो की अदभुत माया
उसका अलग नही किया जा सकता
जैसे जीवन शरीर से !
बिंधे हुए है
जाल ततु के !
चाह पत्ती
चाह छिप आँख से
रवे खनिज के, भारी से भारी पत्थर
जीवन
छोट से छोटा कण
है !

यह जलमा
बरसा का
हर साल दगने को मिलता है
करा कराया जगल बरू का
फिर से
उगता है ।

आते हैं लोग, चले जात है
बनती हैं
नयी नयी पगडडी
उनके
पगचिह्ना स
दाब्द स्वरा स मिलकर
जा बनती है
भाषा !

आँच काठ की जसे
सिलती चिनगारी
लाल फूल सी
ऐसी है
गाथा ।
अंकित
परत परत म ।

जहाँ तहाँ दबी पड़ी ह
अनगिन बातें
जीवित चित्रा सी अनहोनी छवियाँ ।
गरत बहुत गहर है
जहाँ छिपी ह
अवसाद क्षणा की
फूटी कोंपल
अधजल क्यारी ।

रात अंधेरी
तो क्या ?
मैं जगता हूँ
इस रान
पटा की छायाए भरमाती हैं
चलत ।
जो दिखता उजियारा आग
वह तो सच है
लेकिन बिन देख
रूप
तरग
और इन छवियों की
छवि का
वह
उस सच का भी
सच
है ।

चलती रहती है वर्मी सी
वही काठ के सीन
स्वर ह सत्य
शब्द का
होता है जिसका मथान
इस अँधियारी म
धरती पी लती है
मह की बूदें, नस नस म है व्याप्त
ऊष्मा !

खाली हाता रहता बादल
स्वय
बोझ से !

जलसे म उत्सव मना रह है
खडे खडे
चुपचाप समूह कदम्बा क
बारी बारी से आता जाता है
शब्दा का रेला।
कान चौकृत हैं उनको
मथा रच दती है
उनके
नय नय अथ
भगिमाएँ
चलती रहती ह
धारा
एक दूसरे के विरोध म।

इन सब दिगन्त याल दृश्या के पीछ पीछे
आती हैं पीछा करती
ध्वनियाँ
अर्थों की, जग
कौमार्य म घमरोई पीडा करती है

छाया का।

आरोह, आरोह
आरोह!
जुड़ा हुआ है अर्थ शब्द में
बरस रही है औलाती
चढ़ती पहाड़ पर जैसे
लेकर सिर पर भारी मटकी
एक गामिनी
सुबह धूप में
साध बदन को
धरती डग आगे
छलक रोक कर पानी की
अग जग में
आक रही है गति का भार
स्वर भी
इसी तरह साध लेता है
बोझ कथ्य का
बन कर
शब्दों की
आत्मा!

आकार नहीं होता है कोई
फिर भी लगता है
बहता झरना
जो अनगिन चट्टानों से होकर आता है
केवल नामकरण होता है
या जल ही जल होता है तह तक
रूप बदल कर।

स्वर से स्वर होता है जीवित
अंधकार को चीर
ज्यों आती है
कौंध अकेली

चलती रहती है वर्मी सी
वही काठ के सीन
स्वर ह सत्य
गन्द का
होता है जिसका मथान
इस अँधियारी म
धरती पी लती है
मह की बूदें नग नस म है व्याप्त
ऊष्मा !

गानी होता रहता बादल
स्वय
बोझ से !

जनसे म उत्सव मना रह हैं
गड्डे गड्डे
चुपचाप समूह कदम्बा के
बारी बारी से आता जाता है
गन्धा का रेला।
कान चीन्हत हैं उनका
मधा रच दती है
उनसे
नय नय अथ
भगिमाएँ
चलती रहती ह
धारा
एक दूसरे के विरोध म।

इन सब दिगन्त वाल दृश्या के पीछे पीछे
आती है पीछा करती
ध्वनियाँ
अर्थों की, जैस
चौमासे म समर्थों का पीछा करती है

छाया था ।

आरोह, आराह
आरोह !
जुडा हुआ है अथ गहन गे
वरस रही है औनाती
चढ़ती पहाड पर जैसे
लेकर सिर पर भारी मटरी
एक गामिनी
सुवह धूप म
साध बदन का
धरती डग आग
छनक गाक कर पानी की
अग अग ते
आँक रही है गति का भार
स्वर भी
इसी तरह साध लेता है
बोझ कथ्य का
बन कर
शब्दा की
आत्मा !

आकार नही होता है कोई
फिर भी लगता है
बहता झरना
जा अनगिन चट्टाना मे हाकर आता ह
केवल नामकरण होता ह
या जल ही जल होता है तह तक
रूप बदल कर ।

स्वर से स्वर हाता है जीवित
अधकार को चीर
ज्या आती है
कौर अकेली

उम मे
उडते फिरत
हैं
कण
धूल क
अमग्य
पीछा करत
एक दूसरे का
मब सब गति स बँधे हुए हैं।
धरती से
फूट रह हैं
अकुर।
अकुर से बना
तना
फिर निकली शाखा म शाखें
पत्ती आइ
फूल खिल
अब तन कर खडा हुआ है
पड फलो से
भारी
या ही होता है
जन्म स्वरा का
रचना होने तक।

हवा हिलाता है
उनको भी
जो उगि आए हैं
पत्थर की दीवारा पर।
भरता रहा दर तक पानी जहाँ
जमी मनौनी काई
चिडिया न की बीठ जहाँ
बैठ कर
अपन ममर्मूह बच्च का
चुगा दाना।

बीज
बीज है
गति की गनित
छुपी रहती है अन्दर जिसक
गान
रागनी
जलवायु ताप के सम्मिश्रण से
होता है
सृष्टि नयी
उजागित होत है अग्रभाग
पत्ता के।

कभी कभी
थमती है वरसा
हो जाती हैं
अलग अलग पँगुरियाँ
सन्नाटा गहराता है
गामी रात म
स्वर सधाना की यात्रा
लगी है
सागर की ऊँची नीची लहरा पर
जलयान उतरता
आगे
जल ही जल है
काला
नीला
खारी।

फूटा स्वर
जब कठ के अग्रभाग से
लगा
निरा एकाकी
सूना
उस से जुडी हुई है जीवन की धुन

धुन के पीछे
लगे हुए है
गुच्छ तन्तुओं के अनगिन
जो शरीर में बिछा हुआ है जाल
होता है
धरती के नीचे ज्यों
बरगद की जड का फैलाव अनोखा

स्वर
एकाकी है
लेकिन इसके पीछे होता है बल
अनगिन
वृक्ष भुजाओं का।
जो लगता है
एकाकी
वह रचना का छल है, रचना
छलती है
भाषा के वन मे, शब्द जुड़े
रहते हैं अतीत मे
वर्तमान उनमें होता अनुनादित
बनता है
स्वर ही
भविष्य का समूह गान
फैल फैल कर कंठ कंठ में
उत्तर घाटी में
कन्या सागर तक और, और आगे पीछे
स्वच्छ गगन लेकर
वन श्याम तट।

वह स्वर है
जिसके धागे में पुर जाते हैं
जन
बन जाती हैं मणियाँ

दोहरी
तिहरी !

पौधा पौधा मिलकर
बन जाता है खेत
बूंद बूंद से
सागर !

यह स्वर लिया है, अक्षर है
जो जीवित रहता है
रचना म
नील गगन म
अमित काल तक
मिट जाता है
स्वर धावक
लेकिन
स्वर की यात्रा चलती रहती है
उससे आगे, आगे
नये नय अथ उगत है
नय
समय म।

मैं
सुनता हूँ
इस खन सन्नाटे मे
उठती हैं
मेरी जानी पहचानी
आवाज़े

वे
जो काट काट कर
चुन दते हैं
लौंका की ढेरी
फिर ठन्ढी छाया म

बैठ बैठ कर
क्षण भर
पलक नवा लेते हैं।
इन म
उनकी भी गासें घुली हुई हैं
ऐसे ही और और
जो नग हुए हैं
जहाँ कही
तल को
नीचा करने म।
उगी पाघ को मीच रह हैं
जा महसा चट्टाना से त्व कर
चल गए हैं

लदा गडा है
वात्ल
चारा ओर
यह उत्सव है गामूहिक स्वर का
गहरे तक
जा जा कर
लौट रही हैं ध्वनियाँ
कप कप से बनती हैं
लहरें
टकरा टकरा कर
एक दूसरे से बन्ता रहता वत्त
वृत्त म
यह टकराहट गति है
गामूहिक स्वर की
होता है
जिगका आभाग प्रतिक्षण
धरती पर।

पाम पूँग, तिनर
गय हा। हैं आनादित

एक कडक से
पहले कभी
जि ह छुआ था जीवन मे
और जो उत्सव की ऊहा-पो म
बिसर गए थे
अब वे छोर
फिर आये हाथो मे
अपनी शक्ल बदल कर।

पहचान कठिन है
जो ज मा है
स्वय
कठ से
वह लगता अनजान
उसन पचा लिए हैं
अनगिन दृश्य
लम्बी यात्राओ के
होता रहता विस्तार स्वरो का
ाब्दा के बल
रचना अथ पकडती है
जल के नीचे छिपे हुए
हिमखण्डा का।
आँखें भेद भेद कर
थाह लेती हैं
गहराई।

जहाँ लगा
घुटनों घुटना जल
वहाँ छिपा रहता
तल हीन अथाह
ढका अँधेरे मे
स्वर मथानो की यात्रा होती है
तल तक

हवा जिस तरह
छू कर
शिखर टहनियाँ
रच देती हैं लहरियोंदार सिलवटें
मरु के टीलों पर
ठीक वैसे लगता है
जीवित
छिन छिन
पल पल
बनते मिटते रहते
लेकिन जितना
वे
रह लेते जीवित
वह उनकी सत्ता है
अनुपम
अलिखित, अनचीन्ही
काल माथ पर
जैसे
अनदेखा
झड़ता पराग मादा पर
धारण कर लेती है
उसको
बिना बताए जग को
खिलता है
फूल
अन्दर ही अन्दर
बन जाती हैं
आँखें
अंग अंग नया
जन्म होता है
सत्ता का
स्वर गमानों की क्रिया
इससे अलग नहीं है। □

वेणुगोपाल

एक कविता

कभी
अपने नवजात पखो को देखता हूँ
कभी आकाश को।

उडते हुए
लेकिन ऋणी मैं फिर भी
जमीन का हूँ

जहाँ
तब भी था—जब पखहीन था
तब भी रहूँगा—जब पख झर जायेंगे □

खतरे

खतरे पारदर्शी होते है
खूबसूरत
अपने पार भविष्य दिखाते हुए।

जस छोटी सी गुदाज बदन वाली बच्ची
किसी जगली जानवर का मुखौटा लगाये
धम्म से आ कूदे हमारे आगे
और हम डरें नही
बल्कि देख लें
उसके बचपन के पार
एक जवान खुशी

और गाद म उठालें उसे।

ऐसे ही कुछ होते है खतर
अगर डरें तो खतरे और
अगर नही तो भविष्य दिखाते
रगीन पारदर्शी शीशे के टुकडे। □

गडबडी कहा है ?

होना तो यही चाहिए
कि स्विच इधर ऑन हो
और उधर खट से लाइट आ जाये।

लेकिन
ऐसा हो नहीं रहा है

कितने कितने हौसला से ऑन हुए थे हम
और अब भी ऑन हुए पडे हैं
लेकिन अँधेरा वसे का वैसा ही।

गडबडी कहाँ है ?
फ्यूज मे ? लाइन म ?
या
पावर हाउस मे ?
क्या पता करट पूरे शहर मे न हो !

स्विच का रोल छोड
बिजली सुधारने वाले की हैसियत अपनायें
तो जानें

अभी तो बेकार पडी लाइन के नाम पर
अपनी कविताओ को देखते हैं

हाथ को हाथ न सूझत अँधेरे मे भी
और रोशनी के बारे म सोचत है।

और रह रहकर
अपनी कविताओ से ही पूछते हैं
आखिर गडबडी कहाँ है ? □

योद्धा चश्मे ढूंढ रहे हैं

कोई शक नही
कि वे ईमानदार योद्धा है
अन्याय के खिलाफ
आखिरी साँस तक लड सकत हैं।

बशर्ते वह दिखे।

मुश्किल यही है
कि उनकी आँखे कमजोर है
कुछ भी साफ नजर नही आता।

और इसीलिए वे
एक अरसे से
लडाई की जगह
बाजार म चश्म ढूढ रहे है। □

वह

जब आया था वह
तो चुपके से आया था
बीच नाटक मे आया था
ऐन मच पर आया था।

आया था और खडा रहा था
नामालूम सा।
किसी को नही दिखता/लेकिन
खुद
समूचे नाटक को और
हॉल के अंधेरे म गुमसुम बैठे
दशकों को देखता।

फिर किसी निजी और निर्णायक क्षण म
उसने एक हरकत की
जेब मे हाथ डाला
एक अदद भरपूर उजाला
मुटठी भर निकाला/और
हाल मे फेंक दिया।

इस तरह
उसका घार निजी क्षण
एतिहासिक बन गया
कि दशक लोगो का
औचक
मुह बाये
नाटक देखते हुए
पकड लिया जाना, एक
बडा नाटक था।

वही
सही नाटक था/जिसे
देखने वह आया था/नाटक
देखते लोगा का
नाटक देखते हुए
पकड लिये जाने का नाटक।

उसने देखा
और अभिनेता - दशक निर्देशक

चन्द्रकान्त देवताले

समुद्र की दिशा मे

मैं समुद्र देखने के लिए दौडने लगा
मेरे फेफडो मे दरख्तो की सरसराहट थी
दूर आकाश और खजूर के पेडो के बीच
कितना पानी जैसा झिलमिला रहा था
शायद वह पानी नही पौ फटने की रोशनी थी
समुद्र अभी दूर था ।

एक अजनबी गाँव मे जागकर
समुद्र के लिए मैं
धान के खेतो के बीच था
तभी रास्ते मे
एक नाला कीचड भरा सा सामने
आ अडा
और एक आदमी नगे पैर
अपने पचास के बदन के साथ
कीचड मे फदफद करता
हँसिया हाथ मे लिए
पार हो गया

मैं अपने जूतो और पेंट की तरफ देखते हुए
बहुत देर तक खडा रहा
तब तक वह आदमी जगल के साथ
समुद्र के निकट पहुँच रहा था
उसके हँसिये पर चमकती हुई धूप
टकरा रही थी
मेरी पुतली से ।

और अब मेरी पीठ थी समुद्र की तरफ
मैं वापस लौट रहा था सोचते हुए

इस वक्त उसी आदमी का है समुद्र और जंगल
पर मेरी आँखों की चमक भी तो उसकी है
चमक के इस ख्याल के साथ
मैं फिर समुद्र की दिशा में मुड़ा
और इस बार मेरे हाथ
जूते के तस्मे खोलते हुए
थिरकने लगे। □

हमारे बीच

तुम्हारे भीतर
उस वक्त नावें चल रही थीं
और मैं शहद के छत्ते में
उलझता जा रहा था
पूरी पृथ्वी हमारे चतुर्दिक
एक नाद रहित लयकारी रच रही थी

तभी हमारे होठों के बीच से
एक दरार फैलाते हुए
हान की कथन आवाज गुजरी

और फिर समय के भीतर
अनुपस्थिति को शामिल करते हुए
दर्द की पृथक पदचाप के साथ
हमारी आँखों के बीच
एक चमकते छुरे की तरह
घड़ी के सुईंट काँटे
शाम के दो बजान हाजिर हो गए

कबूतर का [illegible] हुआ तो देख
तुम अपने दरख्त की शाख

गौरय्या की तरह फडफडाइ अकस्मात्
और सब्जी पकाने—रोटियाँ सेंकने
की हडबडी म
बिखरी हुई सी उठी
वक्त के गुम जाने पर चकित होती हुइ
मुझे भी भूख ने एकाएक
कमज़ोर कर दिया इतना
कि हँसने तक मे दिक्कत पडी मुझे
तुम्हारी इस प्रसन्न परेशानी पर

फिर हम खाना खा रहे थे
तभी सडक पर हो रहे ऐलान ने
हमारे मुह और कौर के बीच
एक दूसरी दरार फैला दी

वे सावजनिक समय को चेतावनी देत हुए
आकाश मे तलवारे लटका रह थे
और अब हमारे बीच
अँधेरे की खबर थी। □

भाषा के इस भद्दे नाटक मे

तुम मुझसे पूछत हो
मैं तुमसे पूछता हूँ
सुबह हो जाने के बाद
क्या सचमुच सुबह हो गई है ?

भय के चाकू न
हादसे की नदी मे डुबो दिया है
समय की तमाम ठोस घटनाआ का
ताप्ती का तट, सतपुडा की चट्टानें
इतिहास के हाथी घोडे

कविताएँ मुक्तिबोध की
ये सब बँधी हुई मुट्ठी के पास
क्या एक तिनका तक नहीं था ?

नगाड़े की तरह छाती की मोमबत्ती में
छुपिया गई है किसकी तड़पती आग
कोई नहीं जान पाया
पहाड़ में हंसी दिन की रेखा
महिमा मण्डित महाकाव्य के बीच भी
देखा जिसका चूर का दाव
कोई नहीं बूझ पाया

ये भी जो अपने घरों में
घुमाते हैं समय का पहिया
नहीं जानते अपनी ताकत
क्योंकि उनके हाथ
नमक और प्याज के टुकड़े को ढूंढ़ते ढूंढ़ते
एक दिन काठ के हो जाते हैं।

यहाँ से, इस ऊँची जगह से
ये कुछ कहते हैं
हम कुछ सुनते हैं
हम सब, कुछ पढ़ते हैं
किन्तु यह कौनसी भाषा है
जो दाँतों के काट से नहीं कटती
जो आँखों में पहुँच अटक जाती है
कभी एक बूँद खून टपकाता हुआ छोटा सा चाकू
कभी एक किरन उजाला दिखाती हुई छोटी सी मोमबत्ती
सौंपते हुए यह भाषा
इतिहास के आमाशय
और भूखण्ड के मस्तिष्क को
पशु बना देना चाहती है।

भाषा में गूँथी हुई विजय
भाषा के पेट में चमकते हुए सपने

भाषा मे छपी हुई गाथाएँ
चलते हुए अपनी आँखो से दूरे
क्या हम एक दिन अधे हो जाएँगे ?

तुम सोचते हो
सब सोचना चाहते है
मैं भी सोचता हू

किस अग्निस्नान के बाद
उगेंगे, छपेंगे वे शब्द
जिनके पेट मे छिपा होगा वह सत्य
जिसे देखते ही पहचान जाना होगा आसान
किन्तु भाषा के इस भद्दे नाटक म घमासान
जिसे विदूषक ने आज दफना दिया है कही
मच के नीचे या नायको के तख्तेताऊस के पास ।

देखो ! दा मुहे शब्दो को
ध्यान से देखो
सुनो उनकी पीठ पीछे की फुसफुसाहट
मच के तामझाम के बाद की
वह नैपथ्य की भूमिगत साज़िश

इस साज़िश को मैं पहचानता हूँ
अपनी कविता की कपट बेधी आँखो से
क्योंकि कपट से कपट के बीच धँसी हुई यह भाषा
सुख के पहाड की चोटी तक पहुँचाती है
हड्डियो को सपना दिखाती है तपती धूप मे
एक क्षण बाद
गायब पहाड
क्षत विक्षत सपना
जस की तस हड्डियाँ
यह भाषा चुपके चुपके
आदमी का मांस खाती है

सत्य को जब बीधता है कोई शब्द
या कोई शब्द ध्वस्त हो

ऐसा नही होता
कितनी ही चीजें हैं
जो किसी ने
कभी नही देखी

एक पत्थर की तरह गडी हुई
मेरी चुप्पी
एक कदरा की तरह
छिपा हुआ
मेरा आह्लाद
घास की जडो की तरह
न जाने
धरती के किस किस हिस्से मे
बिछी हुई मेरी स्मृतियाँ
समुद्र की अतल गहराइयो म
बिन बजता हुआ गिटार
हवा की छाती पर
भर दोपहरी गाती हुइ
एक चिडिया
और दूर आकाश की मटमैली मुटठी से
साझ के झुटपुटे मे झनकता हुआ
बचपन का पुश्तैनी चाकू

हर समय
आधा विस्मय
आधी खुशी
और
अधूरा भय।
पूरी चीज
कोई देवता ही है
ऐसा नही होता। ☐

बताने लायक

किसी दिन कुछ भी तो नहीं बचता
बताने लायक
और उसी दिन हर किसी की आँख
पूछने को कितनी उत्सुक होती सारे भेद।
भुरभुरे खयाल बेजान पंखों की तरह
उड रहे मस्तिष्क में
आँख महसूस कर रही कुछ कठोर और
चट्टान की तरह कोई चीज़।

वहाँ का कुछ भी तो नहीं
सिर्फ खबर थी वह तो मरने की
थी जिसके बारे में खुद देखकर आया उसे
डाढ में काजू दबाकर बीयर पीते।

अब ये चेहरा पर उगाए अपने
अनगिन कान परेशान जानने को
संघर्ष की गाथा
इनका क्या करूँ मैं ?

मेरे मुँह में भरी तम्बाकू
हड्डियों में बुखार
मेरे भीतर ढहता रेत का शहर
भला इसमें क्यों दिलचस्पी हो किसी को।

मैं नींद के बारे में परेशान
किसी भी दृश्य को नहीं सोचते हुए
क्या कहूँ इस वक्त
जब सब सोच रहे मैं देखकर आया हूँ
और बता सकता—क्या होगा इस बार □

एक मृत्यु यह भी

सिग्नल हो चुका था, और
उसके अन्दर रेल की पटरियाँ बिछ गयी थी

घर में मैंने
ऊपरी मंजिल के कमरो को
नीचे देखा था
खिडकियाँ भेडते हुए

एक विचार उसे मुख से मुख तक टहला रहा था
और तहखान म कोई पसलियाँ ताड रहा था

पूरा परिवेश टहल रहा था उसके साथ
सिफ एक मैं नही
उत्तेजना के बाद की नीली शान्ति मे मैं कितनी खामोश थी
मानो गर्भ म बच्चे की धडकन बन्द हो

मैंने देखे
भ्रान्तियो के प्रसन्न चेहरे
आने वाली ऋतुओ की नकाबो से हिलते

मैं तैयार थी
सत्य के खुरदरे चेहरे को प्यार करने के लिये
और नकाबपोशो के लिये मैंने
आधी के बघनखे पहन लिये थे

सत्य के कौगिन मुख को चूमना सचमुच दुस्साहस था
कुछ टपक रहा था मेरे होठो म
अभी खून पानी नही हुआ था
और हत्या जारी थी

लेकिन एक चमत्कार अचानक तड़का
(क्योंकि चमत्कारों के दूत नहीं होते हैं)
युग्म मना के दुधारे काच पर
जल्दी जल्दी कुछ लिखता हुआ

वहा नहीं था कोई मत
और न कोई फरिश्ता ही
केवल दरार से उठा
एक क्षण
पूरे युग की देह मे गड़ा हुआ चलता था

मृत्यु अपनी रस्सिया लपेट चुकी थी
और उसे नहीं मिल रहा था
शरीर
कब्र मे □

रक्त गीत

हड्डियो को घिसकर
आग पैदा करने के प्रयोग मे
कई मासल दीवारें ढह गयी
और कई बार खून पानी हुआ
आखिर वे मुझे मिल ही गये
जिन्हें इधन बनना था
मेरी उस आग म जो
एक कमजोर आदमी के गूगपन से शुरू होकर
खतरनाक खामोगी मे बदल गयी थी।

बड़े चेहरो की स्याही तुम तब छूना
जब आसमान के बीचो बीच ठहरा
यह काला बादन
कुछ और नीचे आ जाये

और उसके बाद
शुरु हुई कटकटाती ठड का फासला
तय करते तुम्हारे पैर
नदियो को वर्फ वनने से रोक लें।

सिर्फ इतना ही
या हो सकता है
कुछ और भी करना पडे, मसलन
तुम्हे अपना सब कुछ
उस गलित हथेली पर रख देना पडे
जो हजारो मील तक फैली है
और जिसमे रंगते
असख्य कीडो के बावजूद
जिसकी बीमार आर्द्रता को
लोग वडे वडे नाम देते है।

तुम इसे नाम या रूप या महिमा
कुछ मत देना
सिर्फ अपने आपको चाकू की तरह
इस पर रखना और
इतजार करना रक्त की आवाज़ का
एक ऋतु आरम्भ के लिये
जो पहले भी कई बार हो चुका है
और कुछ देर के लिये
फूल उत्सव रचकर
फिर उन्ही कुलबुलाती दरारो म खो गया है

पर देखना
अगर तुम्हारे हाथ
मिट्टी को गहरा खोद सकें
और बीमारी के आतक को
बहुत नीचे दफना सकें
इस हजारो मील फली हथेली पर
एक बार ऐसा तो होगा ही

कि धमनियो मे बजते खून की आवाज
बर्फीली चोटियो का स नाटा तोडेगी
और बुलबुलें गायेगी
लाल खुशबू का गान
राख हुए जगल के बीच
सफेद पशुओ की मज़ार पर
बैठकर

तुम सिफ याद रखना
गलित हथेली, चाकू, रक्त की आवाज
और फूल उत्सव नही
भरे हुए बीजो का कन।

यह आग का वक्त है

मिट्टी मे खुदी यह मूर्ति दरअसल
मिट्टी की नही है इसलिये
इसका चलना फिरना
हसना बोलना
प्यार और घृणा करना
भी मिट्टी जैसा नही है

पालने मे हसते वक्त भी
यह पालने से बाहर हसा करती थी
और अब मिट्टी पर चलते हुए भी
मिट्टी से बाहर चला करती है

मिट्टी का वह ढेर
जिसमे से इसे बाहर निकाला गया
अपने बन्द आह्लाद से
बूढे दरख्तो को विस्मित किया करता था

और वे अपनी पकी हुई दाढ़ियों में
अनुभव का पछतावा छुआ करते थे

जरा सोचा
अगर मैंने यह मूर्ति बनाई हो
या मेरे लिये यह बनी हो
तो मैं इसका पहला परिचय क्या दूंगी
यही कि
इसके पैर की उंगलियाँ छूते वक्त
मैंने इसके पूरे शरीर को छुआ था
और जब मैंने इसका पूरा शरीर छुआ था
तब इसका सिर्फ एक हिस्सा छू सकी थी

बस
अब चुप रहो
यह आग का वक्त है
जब ईश्वर आदमी की नज़र में पल रहा है। □

कुमार विकल

एक नास्तिक के प्रार्थना गीत

एक

ये सभी प्राथनाएँ
भक्ति गीत
विनय पद
और सभी आस्तिक कविताएँ
एक निहायत निजी ईश्वर को सम्बोधित है
जिसे मैंन दु खी दिनो मे
रात गये
एक शराबखान की अकेली बेंच पर
पियक्कडी हालत म
प्रवचन की मुद्रा म पाया था
"जि़न्दगी से भागे हुए सिद्धाथ
वापस लौट जाओ
जि दगी अब भी एक कविता के रूप म
तुम्हारा इतजार कर रही है।"

' मैं जानता हूँ कविता मे आदमी की मुक्ति नही
लेकिन जब आदमी
कविता को शराब के अँधेरे से निकालकर
श्रम की रोशनी मे लाता है
तब वह आदमी की मुक्ति के नये अथ पाता है।"

दो

प्रभु जी !
आप दर से आये
अब आपको कौन पिलाये ?
शराबखाना उजड चुका है
दीवारो पर ऊँघ रहे है

मेजो पर रखे खाली गिलासो के साथ
और प्रार्थना की मुद्रा म बैठा
एक शराबी
धीरे धीरे उचर रहा है
कुछ गीत, कुछ कविताएँ।

आओ, प्रभु जी !
आज रात का अंतिम काम करें हम
एक शराबी कवि को उसके घर पहुँचायें
अंधेरे से उस रोशनी तक ले जायें।

तीन

प्रभु जी ! मेरी एक विनय तो सुन लो
सभी प्रार्थनाएँ लेकर मुझसे
एक शराबी कविता दे दो
जो मुझको सस्ती शराब के अड्डो पर ले जाय
जहाँ बूढ़े, बेकार और बीमार रंडियाँ
या छोटी मजदूर
जहरीली दारू पीकर मर जाते हैं
अखबारो के कालम भर कर
जीवन की कीमत जो मरने पर पाते हैं।

चार

प्रभु जी, मुझको नींद नही आती है
एक शराबी कविता मुझको
रात रात भर भटकाती है
सूनी सडको उजडे हुए शराबखानो म
अक्सर मुझको धुत्त नशे म छोड अकेला
जाने कहाँ चली जाती है।
प्रभु जी ! यह तब भी होता है
जबकि मुझको ठीक पता है
यह तो वर्ग शत्रु कविता है
मुझको भटकाना ही इसका काव्य धर्म है
मुझको आहत करना इसका वर्ग कर्म है।

तीन

आजकल वह बहुत खुश रहता है
दोस्तों की महफिल में
इतने जोर से ठहाके लगाता है
कि मेज पर रखे गिलास टूट जाते हैं
और दोस्त बिना बात के रूठ जाते हैं।
रूठे हुए दोस्तों को मनाने के लिए
वह फैज की गजलें गुनगुनाता है
और रेशमा के गीत गाता है
आजकल वह बहुत खुश रहता है।
बीबी बच्चों से बहुत प्यार करता है
ठीक वक्त पर दफ्तर को जाता है
ठीक वक्त पर घर लौट आता है।

आजकल वह बहुत खुश रहता है।

लेकिन इस सबके बावजूद
हर बरसाती रात में
वह अक्सर अकेला घर से निकल जाता है
और पीछे
एक कवितानुमा खत छोड़ जाता है
"उसे एक साँवली चिड़िया के सिसकने की आवाज़ आ रही है
लेकिन वह सिद्धार्थ नहीं
उस चिड़िया के लिए बस एक घोंसला बनायेगा
और बरसात खत्म होने पर
घर लौट आयेगा।"

चार

पिछले साल
ठीक इन्हीं दिनों
जो परदेसी परिन्दे आये
तुमने उनमें से चिड़ि
और उस ... ना न

आपातकाल एक

[illegible] कैद [illegible] है
कैद [illegible] है
कैद [illegible] है

जहाँ रोशनी दूर
हर तरह के [illegible] पर पाबन्दी है ! □

आपातकाल दो

बहुत दिन पहले की बात है
एक जगल था
जगल म एक शेर था
चूंकि वह किसी शेरनी की कोख से जनमा था
इसलिए शेर था
और चूंकि जगल का राजा शेर ही होता है
इसलिए वह शेर भी जगल का राजा था

यानी कुल मिलाकर यह कि
बहुत दिन पहले की बात है
एक जगल था और उसमे एक शेर राज

एक दिन राजा को प्यास लग
जी हाँ, प्यास राजा को भी
और अक्सर तो आम आदमी

हाँ तो
राजा प्यासा था ।

रमेश गौड

आपात्काल एक

यह कौन शहर है
कौन सडक है
कौन गली है

जहाँ रोशनी दूर
हवा तक के आने पर पाबन्दी है ! □

आपात्काल दो

बहुत दिन पहले की बात है
एक जगल था
जगल मे एक शेर था
चूकि वह किसी शेरनी की कोख से जनमा था
इसलिए शेर था
और चूकि जगल का राजा शेर ही होता है
इसलिए वह शेर भी जगल का राजा था

यानी कुल मिलाकर यह कि
बहुत दिन पहले की बात है
एक जगल था और उसमे एक शेर राज करता था।

एक दिन राजा को प्यास लगी
जी हा, प्यास राजा को भी लगती है
और अक्सर तो आम आदमी से कही ज्यादा लगती है।

हाँ तो
राजा प्यासा था।

जगल मे एक नदी थी
और जब नदी उसी जगल से बहती थी
जिस पर शेर राज करता था
ता उसे पानी पीने से कौन रोक सकता था !

शेर पानी पी रहा था
लगभग पी चुका था
वह वहा से हटने ही वाला था कि तभी उसकी निगाह
नदी के बहाव की ओर नीचे पानी पी रह
मेमने पर पडी
और उसकी भूख जग गयी ।

वह दहाडा
एऽऽऽ ! पानी को जूठा करता है ?
मेमना गिडगिडाया
कौन ? हुजूर, मैं ?
मैं तो नीचे की ओर हूँ
मैं तो अन्नदाता की जूठन ही पी रहा हूँ ।

एक नाचीज़ ममन की यह जुरत
कि वह जगल के राजा के मुह लग ।

शेर न घुडका
तूने नही, तो तेरे पूर्वजा न जूठा किया हागा

और राजा ने अपनी प्रजा का जिस्म
बोटी बोटी कर दिया ।

और कहानी खत्म हो गयी ।

हाँ, इतना ज़रूर था कि उस बार
और वह भी जगल तक मे
राजा ने आराप लगान
और सफाई दिये जान की छूट दन की
औपचारिकता निबाहना लाज़िमी समझा थ ।

लेकिन यह पहले
बहुत दिन पहले की बात है □

इकतालीसवीं सीढी पर

सुना है
लोगो का बहुत भला लगता है
पीछे जो छूट गया

यानी बचपन के खेल और खिलौने
हवा मे उडने, उडते चले जाने
और सोने के बालो वाली राजकुमारी के सपने।

तपती दोपहरी म
अमराई मे बीते हुए क्षण
भोले सवाद
मासूम सकल्प
निरपराध प्रण।

याद आता है
धाइ छूने जाते या आते
किसी को बाहो म भर
औचक चूम लेना
और फिर किसी को यह न बताने की
सौगध देना।

बहुत याद आते है और भले लगते है, वे सब
जिन्हे देने के नाम पर, न कुछ दिया
न जिनसे कुछ लिया, लेने के नाम पर
फिर भी जिनके साथ
जीवन जिया, भरपूर जीवन जिया

(वे कहते हैं
जीवन अब एक अवधि है
मौत और मौत के बीच की समयावधि
लेकिन तब जीवन, जीवन था
समय और काल से परे जीवन
सहज जीवन)

सुना है
भला लगता है
आंख मूंद अपने आसपास का सब कुछ
सुन पाना।

लेकिन मैं क्या करूँ, करूँ क्या?

जब भी आंख मूंदता हूँ
घूम जाती है सामने
जमीन पर चादर से ढकी हुई
अम्मा की लाश।

(पिता ने बताया था
तुम्हारी मां ने मरने से पहले कहा था
उसे मत जगाओ रोयेगा।

मां, यह सिर्फ तुम्हीं थीं
जिसने मरते दम तक रखा था
मेरे हँसने गाने का ख्याल!)

घूम जाता है
जलती दोपहर में
नंगे पाँव स्कूल जाता और लौटता बच्चा।

निगमबोध घाट की सीढ़ियों पर
गर्मी सर्दी और बरसात
बैनागा हर रात
पहले कुर्ता और फिर पाजामा निचोड़कर
गीला ही कुर्ता और पाजामा पहन

चिताओं के गिर्द घूमता किशोर
(उसका यह तर्क था
चिताओं के गिर्द घूमते सर्दी कम लगती है
और कपड़े भी जल्द सूख जाते हैं)

याद आते हैं वे लोग
जो व्यक्ति को नहीं
कपड़ों को देखते थे।

सामने आ खड़ा होता है
वह एम० ए० पास युवक
जो पन्द्रह रुपये की खातिर डेढ़ घंटे तक
खून बेचने वालों की कतार में खड़ा रहा था।

याद आने लगता है
वह कमज़ोर शख्स
जो चाहते हुए भी गाली न देकर
नमस्कार करने लग गया है
जो अन्दर कहीं बहुत अन्दर
लगातार रोते रहने के बावजूद
ज़रूरत से कुछ ज़्यादा ही
हँसने लग गया है।

और मैं आँखें खोल लेता हूँ।
सुना है
लोगों को बहुत भला लगता है वह सब
जो बीत गया।

लेकिन मैं डरता हूँ
इकतालीसवीं सीढ़ी पर पहुँच जाने के बाद
बहुत डरता हूँ
नीचे या पीछे देखने। □

मणि मधुकर

बर्फ़ मह बर्फ़

बफ चमक रही है
इतनी सुफ़ेद इतनी बेवसन है रात
कि दिन की
केंचुल लगती है

उस चमक के फैलाव म रोप कर
अपने फावडे का टेढा मुह
वह चौकन्ना खडा है,

अधो की तरह मत्थे उठाये हुए घर
कुबडो की जमात म
शामिल दरख्त
एक ठडे कफन और भय म
निश्चल रास्ते

उसके फावडे का फाल बजता है
वह अब बफ को
काट रहा है और उन दरवाजो तक
पहुँचना चाहता है
जिन्ह ऋतु की रमणीक हरकतों ने
हडप लिया है

उसके हाथ हर चीज को
सूघ रहे हैं
हालांकि सारा दृश्य धुधला है
एक ठोस चानाकी मे
धँसा हुआ

यह वार कर रहा है
यह सूझते हुए कि खतरे के वास्ते
खतरा होना जरूरी है
और ऐसी जरूरत का
पैदा करना
अपने भीतर जब तब कसमसाती हुई
कायरता का छलना है

वह कायर नहीं है इसलिए
कायरता को पहचानता है
उसे मालूम है बर्फ कहाँ कहाँ
आकार लेती है
और कैसे क्या गिरती है

एक अपरम्पार मौन में
गरजता गूँजता हुआ वह फावड़ा
एक गरमाहट की
बोली बोल रहा है
जिसे सब समझते हैं

घर फिर घरों की तरह होंगे
पेड़ फिर पेड़ों जैसे
रास्ते अपनी असलियत में लौटेंगे और इस गुबार बर्फ को
नहीं चीन्ह पायेंगे उस समय

होगा यही होगा वह सोचता है
और मुस्कराता है
लोग सो कर उठेंगे और चकित रह जायेंगे
खास तौर से बच्चे
स्त्रियों के पिघलते हुए चेहरे देखेंगे
बर्फ का निःशब्द पिघलना
और बहना और समाप्त होना
वह उन्हें बतायेगा सब कुछ साफ साफ
हाँ, सब कुछ

केचुल टूट रही है
वर्फ का गिरना बन्द हो चुका है
सिर्फ उसकी मुस्कराहट बरस रही है
समूची रात पर □

पतझर मे

पथराये हुए सदहा के
आसपास
पुकार लगाते है कुछ जलपक्षी कुछ मृगराग
फिर देखते हैं
उस पगडडी को
जो पीले जगल के बीच
पीली दीठ सी निकल पडी है

लम्बे लपकीले हाथ तेज़ नाखून
हवा नजे उछालती है उन सहमी सहमी
टहनियो की तरफ
जिनमे पत्तो की सास अटकी हुई है !

इतने ठडेपन से झाड कर
इस बार
यह पतझर मुझे कहाँ ले जायेगा
किन इच्छाओ
और मूर्च्छनाओ मे

बरसो से बन्द गुफाओं की तरह
वे चेहरे वे सबध
फिर खुलेंगे
अपना वही पुराना नशा ले कर
मैं उनके पास जाऊँगा, बैठूँगा, बोलूगा
कोई निखार मुझमे होता रहेगा

तीर की तरह
बहगी रक्त की उष्ण धार अदर अदर

सामना करते हुए
पीली आँखो का
मुझे एक खाई को लाँघना होगा
दूसरी खाई म उतरने के लिए
और बहने के लिए कि भेड की
पीली गरम ऊन की तरह
मैं पतझर का इस्तेमाल करना चाहता हूँ
उसे बुनूगा, पहनूगा तहा कर रखूगा
असल म पत्ता का सूखना
और अस्त होना
इधन और आग की नींद को आहिस्ता स
तोडना है । □

जन्मगन्ध एक स्मरण

टूटती हुई इमारत की
टूटन
हवा के जोड जोड म
बिखर गयी है और, एक पदचाप

सपन म गला घोट देने के
बाद
मृत्यु की अपलक कौंध से भरे
विस्मय को
दूर ले जाती हुई,धीरे धीरे

यह राख, यह भुतली छाँह
एक पख की उदासी है
डैनो से

गिर कर अपने को
किसी पौराणिक कामना के
कगार पर
धकेलती हुई और वह आवाज़

मैं सुनता हूँ, जो
न जाने कितने पानियो को पी कर
नदियां और झरना से
ऊपर उठ गयी है
जन्मग व से नहाये बच्चे की
मुलायम पननी की तरह

वहां मेरे हाथ है
मैं उसे थपथपाता हूँ
वहां मेरे होठ है
और उनमे एक नया स्वाद
वहां मेरी छटपटाहट है
प्यार के एकान्त को चुपके से
चुराने म लीन

तुम पेड को काट सकते हो
लकिन उसकी छाया, एकाएक
वहाँ से रास्ता बदलती है
और तुम्हारी आरी का
पीछा करती है हर प्यास तक हर बार

तमाम तमाम तमाम
इमारता के ढह जाने
और मृतात्माओ के फेरी लगाते रहने
के बावजूद
तुम उस लय को
कैसे नष्ट कर सकोगे
जो छक कर जीने की चाह म
खून मे
बाहर निकल गयी है ! □

वापसी पर

अभी अभी
मैं जिस शहर स लौट रहा हूँ
मेरे भाई
वह न तुम्हारा है और
न मेरा ही।

वैसे कहने को वहाँ सब कुछ है
मसलन हित मित्र, पास पडोस पर
पहचान तुम्हारी किसी के पास नही
यह कौन सा परिचय ?

वह नगरो की नगरी है
जादूगरो की डगरी है
वसे कहने को वहा सब कुछ है
ममलन प्यादे से वज़ीर तक, दल और दरबार
नेतागिरी का धडल्ले से चलता हुआ रोचक कारबार, पर
अपनी पहचान किसी के पास नही
कि कौन प्यादा है
कौन वज़ीर
एक ही थैली म सभी के हाथ कसे हैं
हर दल से निकलकर
इस दल-दल म फसे है।

कहते हैं जब राजा के महल के आसपास
जूठी हाँडी लुढकने लगे तो
बुरे दिन की आशका होती है
मगर इस बार तो भइया

वो गजब होगा जो कभी नहीं हुआ।

अपनी आखो
राजा के महल के नीचे सिर्फ जूठी हाडी नही   उधडे चाम
सूखे हाड देखे है बिखरे
देखा है
कैसे दीवान ए आम म बोली लगा कर ब द हो गई
सत्ताइससाला बुढिया
और काट ली गई जुबान
अपने मेहमान को खिलाने के लिए
खतरी के बच्चे की
मैंने
अपने ही लोगो को बँधते हुए दखा है।

दौडत बुलडोजरो के नीचे छपते अखबार मे
उन्होने एक सूचना दी थी
कि कभी सदिया मे   युवराज
हमारे गाव आयेंगे
और खेतो मे आग लगा
छुट्टियाँ बितायेंगे। □

नेता एक

मसान से फैले दीखते प्रदेश मे
मचान गाड, नेता अब और
बेतुकी नही हाँक पा रहे।

अब तो गियरिया के छोटके के पूछे गये
ककहरा सवालो के जवाब मे भी
गाधी टोपी
मकुआ की तरह बबूर की ओर मुह किए
दाँत चियारती है।

वे जो कल तक
पेशानी की समझ से
वक्लोत से दीवान वाले लोग समझे जाते थे
आज
उन्हें अपनी गर्दन पर महसूसते हुए
उनकी
सिर्फ आखें ही नहीं फैलतीं बल्कि
दिल सुन्न और दिमाग भी डोलता है।

"गरीबी से फटी गाड का माई बाप
ससुरा बेहूना हो" कहता हुआ
जब जोखना
लाठी भाजता हुआ सरपच की साची से
उठा लाता है नून तेल लकड़ी
और जमा आता है दो धौल
उनके भबरों को तो
क्या बुरा करता है ?
क्यों नहीं बजती है दमकल की घटिया
रामकली के पेट म लगी आग से
यह उसे कौन बतायेगा ?

•

इ सब सुन के अब कि
फालिज मारगे सार नेतवा क
कह ऊख पेरत हुए ददा
सहसा गम्भीर हो जाते ह और
दुआरे रोपे गये पेड को बड़े गहरे देखत है
फिर लम्बी सांस लकर
कोल्हू के नट म तारपीन चुआत ह
और बढ़नेवाली रफ्तार के लिए
खुद को तैयार कर लते हैं □

नेता दो

अच्छा
बेटा तू इतना अकड़ता है
संतरी को
मंत्री होने पर रगड़ता है
फूल मारत ही तू फूलेगा
फूलेगा तू और एक ही दिन में पचास वर्षों की कमी
छू लेगा
कभी यहाँ
कभी वहाँ
मौसम के झूले प झूलेगा

थाना की सिक्कड़ में बँधी तेरी आत्मा
चोर दरवाजों से साँस लेगी
तहखाना में विश्राम करेगी
तू उड़ेगा भी, उड़ेगा तू
और वो ऽऽ बीसवीं मंजिल पर जाते जाते तू
सब कुछ पा लेगा
जनता का पूरा हिस्सा खा लेगा

मगर भूल मत बेटा
यही वो संतरी होगा कि
तेरे इस्तीफे के बाद
तेरी पृष्ठभूमि में बाँस ढकेलता
यही संतरी होगा
अगली सुबह इस कमरे से तुझे बाहर धकेलता
और थूकता तेरे ऊपर
अपने सपनों को आँख में बचाते
यही संतरी होगा
बताता हुआ कि संतरी
जनता का हिस्सा है और
मंत्री
चालिस चोरों का किस्सा। □

वे कुल तीन थे

वे कुल तीन थे
ज़र्द रंग बिखरे बालों वाले निहायत
कम उम्र के
बौने-छौने
और एक दूसरे की हड्डियों को गिन रहे थे
ठंड के कारण
उनके हाथ पैर टेढ़े हो रहे थे।

एक तसला बजाता
बाकी दो
हाथ पसार कर आते जाते लोगों के आगे
खीसें निपोरते ही ही करते
कभी थक जाते या मन नहीं लगता तो
अपने हमउम्रों के साथ सड़क के किनारे लगी
कारपोरेशन की क्यारियों में
सुनहरी तितलियों को पकड़ने की कोशिश करते मगर
जमादार की मां बहन की गालियों के चलते
फिर वापस
सड़क पर आ लौटते जमादार की गालियों को दोहराते हुए
खीझकर उनमें से एक
दीवार पर लगे पोस्टर पर खामखा ईंटें चलाने लगता
हालांकि उसे कतई पता नहीं था कि वह ससुरी
देश की प्रधानमंत्री की तस्वीर है।
थोड़ी देर बाद जब आसमान तड़तड़ाने लगता
और सर्द हवाएँ तेज हो उठती तो वे
उस कोने पर
जहाँ चेतावनी के बावजूद नगर मूत जाता है
एक दूसरे से सटकर
एक ही तसले में
अपनी अपनी ऐंठी अंतड़ियाँ निकाल कर
चाटने लगते

उस वक्त
उनकी आंखो म जो चित्र खिचते बनत
वे, किसी भी वज़ार दश का नक्शा बनात।

हवा आती और तीनो रह रह कर
सुगबुगाने लगत
कभी कभार तसल म कुछ आवाज होती
और वे उसे
हाथ स छूत देखत उसपर खुदे 'सत्यमेव जयत' को
महसूसन की कोशिश करते फिर
एक बार एक साथ हँसते और
तब ऊपर
चित्त पट्ट सो जात।

मुर्दों की बदौलत ज़िदा रहने वाल
मुस्कात बतियात लांघत उनके ऊपर तजी से निकल जात
कही कोई आपातकालीन बैठक नही बुलाई जाती
कही कोई युद्धविराम नही होता।

व कुल तीन थे
निहायत कम उम्र के। □

राजेश जोशी

एक बातचीत बचपन की

एक पेड था आम का
रहते थे जिस पर
एक कौवा
एक कोयल
दो पछी रहते थे
स्वप्न मे एक बच्चे के
बच्चा रहता था किसके स्वप्न म ?

कोयले के घासले मे
कौवा लुका जाता था अपने अण्डे
पेड लुका लेता था कोयल को अपने म
बच्चा लुकाए रहता था सबको सपन म ।

कोयल सेती थी अण्डे अपन अण्डो के साथ
कोयल बनाती थी बच्चे अपन बच्चो के साथ
पेड बनाता था आम दोनो के साथ
क्या बनाता था बच्चा
पछी और पेडो के साथ साथ ?

कौवे के बच्चे उडत थे आकाश म
कोयल के बच्चे उडते थे साथ मे
बच्चे से मिलते थे दोनो
दिन की उजास म ।

'क्या दोगे तुम मुझे'
पूछा बच्चे ने एक दिन ।

'मेरा बोलना सगुन है
तुम्हारी दादी लौट आएगी
जो कहानियाँ सुनाएगी तुम्हे
नयी नयी'
कौवे न कहा ।

'मौसम है मेरा गाना
जाली पडेगी अमिया म
मेरे गाने से
मेरे गुनगुनान स
नाचेंगे मोर, भरेंग बादल
कोयल न कहा ।

'तो आओ रहो मेरे साथ
मेरे पिंजरे म'
बच्चे न कहा दोनो स
एक दिन।

पिंजरे म मर जाता है गीत
गीत मर जाता है पिंजर म'
साथ साथ दोहराया
कौवे और कोयल न ।
साथ साथ बातचीत के
बडा हुआ बच्चा
इतना बडा
कि भूला नही वह गीत
मुझे आज भी ।

मैं रहता था शायद
गीत के स्वप्न मे ।। □

रात भर

चाँद न जान क्या कहा झरन से
कि झरना हँसा रात भर
रात भर सारी घाटी म गूँजी
उसकी हँसी।

चाँद ने जान क्या कहा तारा स
कि तारे रोये रात भर
रात भर पता नही चला मुझे
पता चला सुबह

चाँद न क्या कहा सपना स रात भर
सपनो ने क्या कहा रात भर बच्चा से।

इतनी आसान नही बात
कि बात खुल जाय रात म ही
इतनी सहज नही बात
कि सुबह होते ही झर पडे
नीम के फूलो सी।

कई दिनों के खाली उनके
पेटो म छुपी रहगी बात
कई दिनो तक नही कहेगे
बच्चे इस से उस से
कई दिनो तक ढकी रहेगी बात।

फिर एक दिन बच्चे जायेंगे
मिट्टी म ढाप ढूप कर
कही रख आयगे वह बात।

फिर एक दिन बोलेंगे पेड
खोलेंगे भेद

राजा का, रात का
फिर एक दिन बोलेंगी चिड़िया
खोलेंगी भेद
राजा का, रात का

'राजा के सर पर हैं कितने सीग'
हवाएँ बोलेंगी एक दिन
खोलेंगी भेद सब पर
सपनो ने क्या कहा बच्चा से रात भर।

मारा जाएगा दुष्ट राजा एक दिन
फिर तारे कभी नही रोएँगे रात भर। □

चप्पल

च र चप्पन
अपन भी चलें बाहर

बाहर जहाँ कोहरा तोडकर निकली है सडके
अपनी पीली केंचियाँ फेंककर
मैदान मे आ डटा है नीम
बाहर जहा तिरछी नगी तलवार पर चलती
ऊपर जा रही हैं ओस की बूदे
नगे पाव।

चल चप्पल चलें बाहर
किसने उतारा जानवर का चमडा
पकाया किसने उसे सिरके की
तीखी गध के बीच खडे रहकर।

किसने निकाला लोहा जमीन से
ढाला किसने उसे तार मे
किसने बनायी कीलें

किसने बँटा कपास
तागा किसने बनाया
किसने चढ़ाया मोम

राजा ने तो कहा था
'सारी पृथ्वी पर मढ़ दो चमड़ा'
किसने लाया उसकी मूर्खता पर तरस
हुक्म अदूली किसने की
किसने चुना पैरों को
रांपी किसने चलाई
पैर की माप से
किसने काटा मुकतल्ला
चल आज उधर चल

बबूल के कांटा
कांच की किरचों और कीचड़ से बचाने वाली
बचाने वाली
तपती सड़क के ताप से
मेरी घुमक्कड़ी म
मेरी थकान की हिस्सेदार।

मेरी रोज़ी रोटी से
मेरे आत्मीयों तक
मुझे रोज़ ले जाने वाली
मेरी दोस्त

आज चल उधर
उस बस्ती की ओर
जहाँ हाथ सक्रिय है
पैरों की हिफाजत के लिए
और जहाँ से
नये शब्द प्रवेश करत हैं दुनिया म।

चल चप्पल
आज चलें उधर। □

झाड़ुएँ

सर सर सर सर
झाड़ती है झाड़ुएँ
बुहारती हैं झाड़ुएँ

हवा बजाती है जलतरंग
प्रभाती गाती है गौरैया
खिलता है ओस में
एक सतरंगा फूल
उड़ती है धूल
सर सर सर सर
झाड़ता है झाड़ुएँ।

खत्म हुआ खटमलो
तुम्हारा यह प्रहसन
आ रहे मेहतर
मच्छरों-मक्खियों की मौत लिए
गंदगी को झाड़ते
आ रहा है सूरज
सब कुछ से परदा उघाड़ता।
झाड़ती दुनिया का कचरा
आ रही है झाड़ुएँ
सर सर सर सर
गा रही है झाड़ुएँ।

आ रहा है धूप का जहाज
हंस सा धौला दिन उतर रहा है
जमीन पर
थके मांदे
लोगों की नींद पर

झाड़ती अँधेरा
आ रही हैं झाड़ुएँ
सर सर सर सर
गा रही है झाड़ुएँ। □

घटनाएँ

घटनाएँ
घटनाओ की तरह थी
एकाएक और नीद के बीच
घटती हुइ
आशका रहित, तोडती उम्मीदो को
वे कही नही थी
सभवत कही न कही वे रही हो
छूटती हुई विस्फोट का मुहाना ।

पर
लोग नही जानते थे
यह वक्त की बुरी मार थी उन पर
और वे आहत थे कि दुघटनाएँ हुइ ।

घटनाएँ
ज्यादातर दुघटनाओ की शक्ल मे
सामने आयी
इन्हे लेकर अपना कोई इतिहास नही
लिख सकता था
उन्हे याद करते रहना बहुत
तकलीफदेह काम था ।

उनमे से जो
जितनी उम्र बिता चुका था
उससे ज्यादा दुघटनाएँ झेल चुका था ।

उस
चरमराती अवस्था म नौजवान खुश थे ।

कि दुर्घटनाएँ हो रही है
और
लगातार
सबको एक कर रही हैं □

दिन मे घास चमक रही थी

दिन म
घास चमक रही थी
अब रात
तारे चमकत हैं

तारो के पार
वह सवेरा
जो अभी अधेरा है

अधेरे के पार
वह सूरज
जो अभी दौडता
ललमुहा बच्चा है

बच्चे के पार
वह
इच्छा
जो
बुलबुल के पखा म
उडान भर
रही है □

सुनो ! मैं तीस बरस से

सुनो !
मैं तीस बरस से वहा नागरिक हूँ

सुनो।
तीस बरस स मैं भारतीय हूँ
सुनो।
तीस बरस से हिन्दू हूँ
सुनो।
मैं तीस बरस का सामंत हूँ
सुनो
मैं तीस बरस से फासिस्ट हूँ
सुनो
मालिक हूँ तीस बरस से
सुनो
तीस बरस से उत्तराधिकारी हूँ
सुनो
मैं तीस बरस से मैं हूँ
सुनो
व्यवस्था हू तीस बरस स
सुनो
मैं तीम बरम से प्रजातन्त्र हूँ □

कुर्सी जो यहा तैयार हुई

कुर्सी
जब बनकर तैयार हुई
वह आया
याचक की मुद्रा म
और बैठ गया
तानाशाह बनकर

कुर्सी
जब मनहूस हुई
बैठे बैठे वहाँ
उसने कुछ हत्याएँ की

कुर्सी
जब उसका चेहरा बन गयी
उसने देखते ही
गोली मार देने का
हुकुम दिया

कुर्सी से उतरना कटघरे मे उतरना था

उसने बडी कुर्सी से मत्रणा की
बडी कुर्सी ने हिदायतें दी
वह नीचे उतरा चेहरे पर एक उदारता लिये

लौटकर उसने प्राथना की
और बैठ गया फिर
एक तानाशाह बनकर। □

रहती हे एक औरत

मेरे घर के सामने
रहती है एक औरत
जो शाम को सजा कहती है
और
नवबर को कार्तिक
मुझे बहुत अच्छा लगता है।

जो सजा होते ही
दिया जलाती है और
पडोस के एक कुत्ते के लिए
(जिसे वह मोती कहती है)
रोज एक रोटी बनाती है
मुझे
बहुत अच्छा लगता है।

जो
हफ्ते मे एक दिन
गेरू और खडिया से
आगन और दीवार के हाशिये को
रगती है
और सुबह शाम
गमले मे लगे पेड को पानी देती है
मुझे
बहुत अच्छा लगता है ।

मेरे घर के सामने
रहती है
एक औरत । □

प्रणवकुमार वद्योपाध्याय

दोस्तो के लिए तीन कविताएँ

कल

बबली के लिए

गरीब वसन्त की तरह
छेदो वाले कपडे पहने
जब कोई नरशिशु
मेला देखकर उदास हो जाये
चुप रात के पास
जब सदिया पुरानी
वही कत्लेआम के बाद की खामोशी हो
तब भी कौन पढेगा यह कविता ?

लेकिन पैवन्द लगे कपडा
और चुप रात के सन्नाटे मे
फिर से एक बार मा का मुख याद आता है।
याद आता है
वही सवाल
यारो के जख्म के बगैर
आग भला कैसे लगेगी
कि नरशिशु के सामने का निष्ठुर मेला
जलकर
एक युद्धक्षेत्र बन जाए
तब कोई बागी मुसाफिर
सुन रहा होगा
नन्हे नन्हे पैगम्बरो के
चल पडने की कहानी।

जिस मैदान मे
पिता ने रक्त उगला था

तरनिगु पे गहित अन्नपात्र प गामन
यहाँ अब पभी भी
वसन्त क आन पी उम्मीद
पाई क्या परे ?
वस त नही आएगा
और रक्त की जगह
पिता लावा उगलेगा गिफ।

हम जानत हैं
ऋतुएँ बहुत गरीब है हमार लिय
हम जानत हैं
नरक पे दरवाज़े तक जाकर
हमारी यातनाएँ एक बार तो लौटेंगी ही
तब हम इजाज़त पे बिना भी
एक बार फिर से जियेंगे
कि सुकून से मर सकें □

लेकिन आप जानते हैं

ब्रिजिट के लिए

हम सोचत थ
तिलस्मी अधकार
सुरग
और बादशाह की खौफनाक
कत्लगाह पार करने के बाद
कोई सुबह का पैगम्बर
हमारे ही इतज़ार म
खडा ज़रूर मिलेगा।
हमारे ही इतजार म हागे
इस गाँव के तमाम दरख्त
मवेशी और हर उम्र के ग्रामवासी
यहाँ तक कि गायो के थनो से
दूध निकल रहे हागे

हमारे स्वागत की खुशी मे
कितने बरस बाद
सरहद दर सरहद
चलते हुए
जब गाव पहुँचेगे हम
लडाई के जख्मो पर
वे स्त्रिया
हल्दी लगाएँगी चुप आखो मे
जिन्हे हम सोचा करते थे
माँ की आँखो की तरह
खूबसूरत इच्छाओ से।

लेकिन आप जानते है
ऐसा कुछ भी नही होता
ऐसा किसी के साथ
कभी भी नही हुआ
ऐसा तो हम सिर्फ चाहते है
हम सिर्फ पाना चाहते है
अपनी ही इच्छाओ का
एक कोहरो से घिरा ससार।

सिपाही की भी इच्छाएँ होती है
और कवि
कभी कभी अपनी इच्छाएँ जलाकर
दूधप सिपाही बनकर
और कभी कभी
कवि और सिपाही के बीच
कोई फर्क नही रह जाता।

ऐसा हमारे साथ हुआ है
आप विश्वास कीजिए।

अब आपकी तरह
हम जान गये है

कही भी न तो कोई तिलस्मी अधकार है
न सुरग
न कविता म लिखी कत्नगाह
वे सब तिलस्म मे नही
हमारे और आपके दरमियान
मौजूद हैं।

अपनी पराजय को छिपाने के लिए
एक खूबसूरत जामा
या मखमली बहाना
हमे नही चाहिए अब।

हम जान गये है
हमारी इच्छाएँ
अब ज़ख्म और सरहद और युद्ध के बिना
कुछ और नही हो सकेंगी।
और हमारी वे ही इच्छाएँ होगी
हमारी मुक्ति
हमारी जिन्दगिया का
एक सच्चा अथ
आपकी आकाक्षाआ की तरह समृद्ध ☐

इत्यादि

रज सा० के लिए

ऐसा तो कभी नही हुआ था
कि विनम्र रात की तरह
मैं पत्थर पर लेट जाऊँ
पुल के ऊपर से गुज़रते मुसाफिरा को
तस्वीर की तरह देखू
और याद करूँ
वही घुमावदार यादा की कविता

गत म लिखी थी जो बरसो पहले
अपने बेटे का।

कभी कभी याद भी महकती है
फूला की तरह
कभी कभी यादें रेगिस्तान भी देती हैं
दम तोडत काफिले के साथ
और कभी कभी यादें
माँ की चुप यातना की तरह
एक शून्य एक बिल्कुल
खाली किताब देती हैं।

बासुरी के सगीत म
एक आखिरी शाम को उतार कर
आपने सफेद फूला के बीच
कभी रखा था मेरे लिए।

जहाँ अब मेरा बेटा नही है
उसी खाली जगह पर मैं खडा हुआ था
कि आपसे पूछू
नीली सदिया की तरह
अपन ही होने का अथ।
सीढियाँ उतरत हुए
मुझे याद आया था
समदर के किनार
रेत के मैदान म
मेरा बेटा बरसो स अकेला सा रहा है
कितनी समृद्ध
कितनी महिमामण्डित हैं
उसकी रातें।

बचपन म
पहाडिया पर नारगी क फूला के बीच
माँ क साथ मैंने खेल थ
आँग मिचौली क खेल।

गल गल म बफ की मीनार की तरह
मैं चुप हो जाता था
और तब मैं
कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती।
गल गल म मैं पिघलकर
रात की तरह निःशब्द हो गया था

मैंने आपकी शाम देखी
रात का अंत जाना
मैंने आपका दिया
बाँसुरी का संगीत सुना
और बट की खाली जगह पर खड़े होकर
कुछ भी पूछा नहीं गया।

आपकी किताब म
मुझे फिर से वही खलटी सुबह मिली
जिसम मेरे बेटे की तरह
सब कुछ खत्म हो जाता है।

और आखिर म
संसार के सबसे महकते गुलशन म
दिखाई पड़ती है
देर तक छटपटाने के बाद
एक मरी हुई
न ही
चितकबरी
अकेली तितली। □

साथ

कोई किसी के साथ नही होता !
सिफ एक तकलीफ होती है
नियति के क्षितिज पर कापती
अकेली !

कैसा लगता है
इसे साचना
दोहराना !

जब आदमी ने मत्यु को पहचाना
जब पहले आसू उसकी आँखो मे आये
जब उसने पत्थरो को रगड कर
आग की तिनगी को खोज निकाला
जब पहली रोटी सेकी
और आधी आधी
बाँट ली

तो बराबर कोई और
उसके साथ था
उसके बाहर से
भीतर तक आता
उससे जुदा
और उससे चिपका हुआ
कभी आगे बढकर रास्ता दिखाता
कभी पीछे उसके चौडे
कन्धो के आश्रय पर
ठिठकता

उस निगाह से भी जो
दूसरी निगाह के नीचे नीचे
चलती है
ठहरती है
और उस मन से भी जो
सबका है
पर जरूरत पडने पर
किसी का नही

लेकिन मेरा रिश्ता
फूल से
सगीत से
या
अपनी नीद मे
है जैसे
वैसे ही मेरा रिश्ता
उन हाथो से है
जिन्ह वह बफ के
दस्तानो के भीतर रखती है। □

नया साल

साल दर साल वे चेहरे
सुनहरे इश्तहारो पर आकाश मे ही टँगे रहे है
जिन्हे हमने बार बार
नये विश्वास की दहलीज पर खडे होकर पुकारा।

वे बेशुमार हैं
उन्होंने अफ्रीका से एशिया तक
धसती हुई दुनिया को अपनी पीठ दी है
और शाति के लिये कुर्बानी के नाम पर
दिया है   भाषा का दान

और कुछ हैं जो
अपनी लम्बी दूरबीना पर
उनके 'पोर्ट्रेट' उठाये
मात्र अतरिक्ष को चमकीला बनाते जाते हैं
और समझते हैं दुनिया ऐसे ही चल जायेगी
भूपे नगा की चमडी परत दर परत
उतारत हुए

लेकिन अब भूगोल बदल रहा है
सूरज धीरे धीरे उनकी पीठ पर
आ खडा हुआ है
जिनका रग काला ही सही पर
खून बहुत लाल है
जब वे अपनी पीठ सीधी करेंगे तो
उन्तालीसवी मजिल के सरमायेदार
भरभरा कर अपनी लम्बी घुमावदार सीढियो पर
फना हो जायेंगे

तब अतरिक्ष के रग धरती पर उतरेंगे
वह नया साल होगा ! □

आज की कविता
खंड तीन

नागार्जुन
शमशेर बहादुर सिंह
त्रिलोचन
केदारनाथ सिंह

वक्तव्य सहित एक कविता

'समग्र-क्रांति' वाले उस जन आन्दोलन की अवधि में, १०-१३ मार्च '७५, को रचित यह कविता अब स्वयं भी एक 'डाकूमेन्ट' लगती है। वह माहौल और मनःस्थिति, वह रफ्तार और वह तेवर, श्रमजीवी बहुजन-समुदाय से अलग थलग मध्यवर्गीय गुणग्राहियों वाला वह मादक, सौरभ—'इनकलाब के कपूर की सुगन्ध...' एक मनोर कवि की आंतरिक क्षोभ के प्रमाण के तौर पर अपनी इन पंक्तियों को 'कम्यूनती' के जागरूक पाठक-पाठिकाओं के हवाले करता हुआ, मैं परितोष का अनुभव कर रहा हूँ।

मोटे सलाखों वाली काली दीवार के उस पार

क्रांति सुगबुगाई है
करवट बदली है क्रांति ने
मगर वह अभी भी उसी तरह लेटी है
एक बार इस ओर देखकर
उसने फिर से फेर लिया है
अपना मुह उसी ओर
'सपूर्ण क्रांति' और 'समग्र विप्लव' के मजु जाप
उसके कानों के अन्दर
गूँज भर रहे हैं या गुदगुदी
यह आज नही, कल बतला सकूगा!
अभी तो देख रहा हूँ
लेटी हुई क्रांति की स्पदनशील पीठ
अभी तो इस पर रेंग रहे है चींटे
वे भली भाति आश्वस्त है
इस उथल पुथल मे
एक भी हाथ उन पर नही उठेगा
चलता रहा उनका धधा

वे अच्छी तरह आश्वस्त है
वे क्रांति की पीठ पर मजे म टहल घूम रहे है
क्रांति कुनमुनाई थी जरूर
लेकिन करवट बदल कर
उसने फिर उसी दीवार की ओर
मुह फेर लिया है
मोटे सलाखो वाली काली दीवार की ओर !

मोटे सलाखो वाली काली दीवार के उस पार
न सुसज्जित मच है न फूलो के ढेर
न वन्दनवार, न मालाए
न जय जयकार
न करेंसी नोटो की गड्डियो के उपहार

मोटे सलाखो वाली काली दीवार के उस पार
नारकीय यत्रणा देकर
तथाकथित 'अभियोग' कबूल करवाने वाले
एलैक्ट्रिक कडक्टर है

मोटे सलाखो वाली काली दीवार के उस पार
लट्ठधारी साधारण पुलिसमैन नहीं हैं
वहा तो मुस्तैद है अपनी ड्यूटी म
डी० आई० जी० रक का घुटा हुआ अधेड बबर
कमीनी निगाहों—तिहरी मुस्कानों वाला
मोटे होठों म मोटा सिगार दबाये हुए
जो अब तक कर चुका है
जाने, कितने तरुणो का नितम्ब भजन
जाने कितनी तरुणियो के भगांकुर
करवा दिये हैं सुन्न
छुआ छुआ कर बिजली के सिरिंज

मोटे सलाखो वाली काली दीवार के उस पार
निष्ट सर्वांग आई० ए० एस० ऑफिसर नहीं है
वहा तो हिटलर का नाती है

वार वार लाखो की भीड जुटी
वार वार सुरीले कठो से लहराई
जाग उठी तरुणाई   जाग उठी तरुणाई'
वार वार खचाखच भरा गाँधी मैदान
वार वार प्रदशन म आये लाखो लाख जवान
वार वार वापस गये
वार वार आये
वार वार आये
वार वार वापस गये
हवा म भर उठी इ क लाब के कपूर की खुशबू
वार वार गूजा आसमान
वार वार उमड आये नौजवान
वार वार लौट गय नौजवान □

हरिजन-गाथा

एक

एसा तो कभी हुआ था ।
महसूस करने लगी वे
एक अनोखी बेचैनी
एक अपूव आकुलता
उनकी गभकुक्षियो के अदर
वार वार उठने लगी टीसें
लगान लगे दौड उनके भ्रूण
अन्दर ही अदर
एसा तो कभी नही हुआ था

एसा तो कभी नही हुआ था कि
हरिजन माताएं अपने भ्रूणों के जनकों को
खो चुकी हो एक पैशाचिक दुष्काड म
ऐसा तो कभी नही हुआ था

ऐसा तो कभी नही हुआ था कि
एक नही, दो नही, तीन नही
तेरह के तरह अभागे
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिये गये हो
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटा म
साधन सम्पन्न ऊची जातियो वाले
सौ सौ मनुपुत्रा द्वारा !
ऐसा तो कभी नही हुआ था

ऐसा तो कभी नही हुआ था कि
महज दस मील दूर पडता हो थाना
और दारोगा जी तक बार बार
खबरें पहुँचा दी गई हो सभावित दुर्घटनाआ की

और निरतर कई दिनो तक
चलती रही हो तैयारियाँ सरे आम
(किरासिन के कनस्तर, मोटे मोटे लक्कड,
उपलो के ढेर सूखी घास-फूस के पूल
जुटाये गये हो उल्लासपूवक)
और एक विराट चिताकुड के लिए
खोदा गया हो गडढा हस हस कर
और ऊची जातियो वाली वो समूची आबादी
आ गयी हो होली वाले 'सुपर मौज' के मूड म
और इस तरह जिंदा झोक दिये गये हो

तेरह के तेरह अभागे मनुपुत्र
सौ सौ भाग्यवान मनुपुत्रो द्वारा
ऐसा तो कभी नही हुआ था
ऐसा तो कभी नही हुआ था

दो

चकित हुए दोनो वयस्क बुजुग
एसा नवजातक
न तो देखा था, न सुना ही था आज तक ।
पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी म
क्या करेगा भला आगे चलकर ?
राम जी के आसरे जी गया अगर
कौन सी माटी गोडेगा ?
कौन सा ढेला फोडेगा ?
मगह का यह बदनाम इलाका
जाने कसा सलूक करेगा इस बालक से
पैदा हुआ है बेचारा
भूमिहीन बधुआ मजदूरो के घर मे
जीवन गुजारेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहा तहा वनमानुस जसा
अधपेटा रहेगा अधनगा डोलेगा
तोतला होगा कि साफ साफ बोलेगा
जाने क्या करेगा
बहादुर होगा कि बेमौत मरेगा
फिक्र की तलैया मे खाने लगे गोते
वयस्क बुजुग दोनो, एक ही बिरादरी के हरिजन
सोचने लगे बार बार

कैसे तो अनोखे है अभागे के हाथ पैर
राम जी ही करेंगे इसकी खैर
हम कसे जानेंगे, हम तो ठहरे हैवान
दखो तो कैसा मुलुर मुलुर देख रहा शैतान !
सोचते रह दोना बार बार
हाल ही म घटित हुआ था वो विराट दुष्काड
भाक दिये गय थे तेरह निरपराध हरिजन
सुसज्जित चिता म

का निशान था
चहरा था गालमटाल और थी पुच्ची
बदन कटमस्त था
एस आप अघड मत गरीबदास पधार
चमर टोली म

अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटाएग धरती स
इसक साथी और सघाती

यह उन सब का लीडर होगा
नाम छपगा अखबारो म
बडे बडे मिलन आयेंग
लद लद कर मोटर-कारा म

खान खादन वाल सौ सौ
मजदूरा क बीच पलगा
युग की आंचा म फौलादी
साँच सा यह वही ढलगा

इस भज दो झरिया फरिया
माँ भी शिशु के साथ रहेगी
बतला देना अपना असली
नाम पता कुछ न कहेगी

आज भगाओ अभी भगाओ
तुम लोगो को मोह न घेरे
होशियार इस शिशु क पीछे
लगा रहे है गीदड फेरे

बडे बडे इन भूमिधरो को
यदि इसका कुछ पता चल गया

दीन हीन हाल होगा था
समझा फिर दुर्भाग्य टल गया

अनबन खटपट सभी जुड़ेगा
हथियारों की कमी न होगी
लेकिन अपने लगे इसका
हर्ष न होगा, गमी न होगी

सब के दुख में दुखी रहेगा
सबके सुख में सुख मानेगा
समझ दूर पर ही समता का
असली मुद्दा पहचानेगा

और दगाबाज इसके डर से
घर घर कापेंगे हत्यारे
चोर उचक्के-गुंडे डाकू
सभी फिरेंगे मारे मारे

इसकी अपनी पार्टी होगी
इसका अपना ही दल होगा
अजी देखना इसके संग
जंगल में ही मंगल होगा

'श्याम सलोना यह अछूत शिशु
हम सब का उद्धार करेगा
अजी यही सम्पूर्ण जाति का
बेड़ा सचमुच पार करेगा

'हिंसा और अहिंसा दोनों
बहनें इसको प्यार करेंगी
इसके आगे आपस में वे
कभी नहीं तकरार करेंगी'

इतना कहकर उस बाबा ने
दस दस के छः नोट निकाले

बस, फिर, उसके होठो पर थे
अपनी उगलियो के ताले

फिर तो बाबा की आख
बार बार गीली हो आयी
साफ सिलेटी हृदय गगन म
जाने कैसी सुधियाँ छायी
नव शिशु का सिर सूघ रहा था
विह्वल होकर बार बार वो
सास खीचता था रह रह कर
गुमसुम सा था लगातार वो

पाच महीने होने आय
हत्याकाड मचा था कसा !
प्रबल वग ने निम्न वग पर
पहले नही किया था ऐसा !

देख रहा था नवजातक के
दायें कर की नरम हथली
सोच रहा था—इस गरीब न
सूक्ष्म रूप म विपदा झेली

आडी तिरछी रेखाओ म
हथियारो के ही निशान ह
खुखरी है, बम है असि भी है
गडासा भाला प्रधान है

दिल ने कहा—दलित माओ के
सब बच्चे अब बागी होग
अग्निपुत्र होगे वे, अतिम
विप्लव म सहभागी होगे

दिल न कहा—अरे यह बच्चा
सचमुच अवतारी वराह है

पाकर इनके परस जादुई
भूमि अकटक होगी लगभग
बिजली की फुर्ती से बाबा
उठा वहाँ से, बाहर आया
वह था माना पीछे पीछे
आगे थी भास्वर शिशु छाया

लौटा नही कुटी म बाबा
नदी किनारे निकल गया
लेकिन इन दोना को तो अब
लगता सब कुछ नया नया था

तीन

सुनत हो बोला खदेरन
बुद्धू भाई दर नही करनी है इसम
चलो, कही बच्चे को रख आव
बतला गये हैं अभी अभी
गुरु महराज,
बच्चे का मा सहित हटा देना है कही
फौरन बुद्धू भाई
बुद्धू ने अपना माथा हिलाया
खदेरन की बात पर
एक नही, तीन बार।
बोला मगर एक शब्द नही
व्याप रही थी गभीरता चेहरे पर
था भी तो वही उम्र म बडा
(सत्तर से कम का तो भला क्या रहा होगा।)

'तो चलो।
उठो फौरन उठो।
रात की गाडी से निकल चलगे
मालूम नही होगा किसी को
लौटने मे तीन चार रोज़ तो लग ही जायेंगे

दुद्दू भाई ! तुम तो अपने घर जाओ
खाओ, पियो आराम करो
रात में गाड़ी में अंदर जाना ही तो पड़ेगा
रास्ते के लिए थोड़ा चना चबेना जुटा लेगा
मैं इस में करता हूँ तैयार
समझा बुझा कर
गुनिया और उसकी मां को'

दुद्दू ने पूछा धरती टेक कर
उठते उठते
रम्या, गिरिसिंह चोखारो
कहां रखोगे छोकरे का ?
वहीं न ? जहां अपनी बिरादरी के
भूखे मजूर होंगे सौ पचास ?
चार छै महीने बाद ही
कोई काम पकड़ लेगी गुनिया भी
और, फिर अपने आप में
धीमी आवाज में कहने लगा दुद्दू
छोकरे की बदनसीबी तो देखो
मां के पेट में था तभी इसका बाप भी
झोंक दिया गया जिन्दा उसी आग में
बेचारी गुनिया जैसे तैसे पाल ही लेगी इसको
मैं तो इसे गांव गांव देख आया करूंगा
जब तक है चलने फिरने की ताकत पांव में
तो क्या आगे भी इस बबुए के लिये
भेजते रहेंगे खर्चा गुरु महराज ?

बढ़ आया दुद्दू अपने छप्पर की तरफ
नाचते रहे लेकिन माथे के अन्दर
गुरु महराज के मुंह से निकले हुए
हथियारों के नाम और आकार प्रकार
खुखरी, भाला, गंडासा, बम, तलवार
तलवार, बम, गंडासा, भाला
खुखरी □

शमशेर बहादुर सिंह

अलादीन का चिराग

अलादीन का चिराग शहरेज़ादी गुल-सीसम आदि आदि
से
लुभा मत जाना ये सब राजनीतिक
जादूगरियाँ हैं । पछताओगे इन
बेहकीकत कला साधना के
व्यापारियों के
फेर म पड कर ! याद रखो
तुम्हारी अपनी सीधी सादी सच्ची संस्कृति की
ठोस ज़मीन जो चमन खिलाती आयी है और आज भी
जो ताकत सच्ची सही ताकत रखती है
वह कही और मिल नही सकती । य गजटस
मुबारक हो जदीदियो को
नित नूतन और नवीन के पुजारियो को
जिनकी पायदारी केवल एक आज म ही
खत्म होती चलती है जैसे
तितलियो की पूरी ज़िन्दगी सिर्फ सुबह स शाम का
एक दिन होता है
चमकता हुआ झिलमिलाता हुआ थिरकता हुआ और फिर
बस खत्म, हा क्या वही तुम
हो ? ये तमाशे
पच्छिम के धुर पच्छिम के
बच्चो के कामिक्स से उधार लिये हुए
है, मात्र टी वी के मटकते आँख मारते
कलाविदा के पोले दिमागो के
गडबड इसलिये दिलचस्प उपच
उसे देखो देखो कभी कभी और एक किनारे करो
तुम्हारी गहरी सास, गहरे अनुभव

—

मछलियाँ

हम लोग क्या खाते हैं ?
क्योंकि
हम खुद
अपनी बिरादरी को खाती हैं ।
यही परम्परा है ।

यही परम्परा है ? □

पाब्लो नेरूदा !

एक

मैं निछावर हूँ तुम पर, नेरूदा ।
उस पर भी यह महज
चार दाने चावल के हैं
तुम्हारी प्रतिभा की उत्तुंग
शुभ्र पर्वत वेदी पर ।

मैं अपनी छोटी सी नौका छोड़ देता हूँ
तुम्हारे सात समन्दरों के ऊपर ।

वह भटकेगी
कुछ अर्से शायद ।
मगर वह
खोयेगी नहीं
कभी ।
इतना तो पूरा विश्वास है ।

दो

तुम्हारे साथ
विश्व व्याप्ति में समा जाने की

एक घटक-सा यह
मेरी एकान्त मानव धड़कन यह
संगी है ?

प्रेम और मनुष्य और पर्वत
और सागर का
यह पार्थिव यथार्थ

टकराव तुमुल
सफल
एक निरन्तर आन्तरिक
सम्मिलन की उपलब्धि
की ओर।

सहव्याप्ति का यह क्षण
मेरे अन्दर जो   यह
अपनाव तनाव का
एक ही यथार्थ

वही तो हो
तुम हमारे नेहरू ! □

त्रिलोचन

ताप के ताये हुए दिन

ताप के ताये हुए दिन ये
क्षण के लघुमान से
मौन नपा किये
चौंध के अक्षर
पल्लव पल्लव के उर में
चुपचाप छपा किये
कोमलता के सुकोमल प्राण
यहाँ उपताप में
नित्य तपा किये
क्या मिला क्या मिला
जो भटके अटके
फिर मंगल मंत्र जपा किये □

कहाँ हैं वे लोग

कहाँ हैं वे लोग
जो सम्भावना में जोश से
बोला किये परमाल
और उनके बोल से जो छाँह
छा गई थी
सोचते थे तुम दुलारे
ताप के दिन गये
हाथ जितने हैं
आड करते रहेंगे

कहाँ हैं वे लोग
जो सहयोग झोली में सँभाले
यहाँ आये थे। □

हम साथी

चोंच में दबाये एक तिनका
गौरय्या
मेरी खिड़की के खुले हुए
पल्ले पर
बैठ गयी
और देखने लगी
मुझ ओर
समर था
मैंने उल्लास से कहा
तू आ
घोंसला बना
जहाँ पसन्द हो
शरद के सुहावने दिनों से
हम साथी हैं। □

कौन तान सुनेगा

अपनी कैसे कहूँ
यहाँ कौन तान सुनेगा

आगे एक है पहाड़
फिर दूसरा पहाड़
फिर तीसरा पहाड़
इन्हें घेरे और बाँधे हुए
हरे भरे झाड़
इनको छोड़ और कौन
मेरी तान सुनेगा।

आगे एक है मनुष्य
फिर दूसरा मनुष्य
फिर तीसरा मनुष्य

इह घेरे और बाधे हुए
दुनिया के मनुष्य
इनको छोड मेरा कौन
स्वाभिमान सुनेगा। □

दिन ये फूल के हैं

मत जाना चले कहीं भूल के
दिन ये फूल के है
किये मन के सिंगार
सामने कचनार
आम के बौर कहते हैं
देखो बाहर
हाल ऐसे ही कुछ
अब बबूल के हैं।
कोई रूठे मनाओ
जाओ जाओ अपनाओ
इस हवा की समझ से
सभी को समझाओ
कितने दिन फूल मन्दिर
म धूल के है।

आ गयी वह कली
आज अपनी गली
कल जो आयी थी
पहचान पाकर खिली
प्राण धारा के हैं
कहीं कूल के हैं। □

एक लहर फैली अनन्त की

सीधी है भाषा बसन्त की
कभी आँख ने समझी
कभी कान ने पायी

कभी रोम रोम से
प्राणा म भर आयी
और है कहानी दिगन्त की

नील आकाश म
नयी ज्योति छा गयी
कब स प्रतीक्षा थी
वही बात आ गयी
एक लहर फैली अनन्त की □

सरसों के फूल

सरसा के फूल
बहुत नही रहते।

अपन ही रूप म
अपन ही रग म
अपना के बीच हैं
अपना के सग में
बीता बनान के
लिये नही कहत।

ऐस य सलोने
लगें न कही टोन
होते हैं होने को
फिर ये नही होने
भूले किसी का ऽ
भाव नही गहते □

दो गीत

एक

सोचा था मन ही मन यह गाऊँ वह गाऊँ,
जो स्वर निकला देखा उसम गान नही था।

कैसे, क्या हो गया, तनिक भी ध्यान नहीं था
मुझे। आ गया सकते में। सोचा अब जाऊँ
किस पथ से। गायकों की अलग राह गयी है।
चरण चले चल पड़ा। ठहर कर पीछे देखा।
चिह्न चिह्न में गीतों की प्रकाशमय रेखा
उभर उठी है। समझा यह तो बात नयी है।
गीतों में यह बात नहीं थी इससे पहले।
प्रिय था और प्रिया थी। उस वियोग का भय था
जो प्रेमियों को हुआ करता था। न उदय था
जिसमें सुख का। रूढ़ चलन रहते थे दहले।
बदल गयी है इधर गान की पहली धारा।
फूल धूल दोनों में ही जीवन है प्यारा।□

दो

कविता के चेहरे पर जो पाउडर उधार का
लगा हुआ था, भद्दा था, उस पर मतवाले
कितने ही जन थे, पर उनके उस दुलार का
मर्म मुझे सुविदित था। वे शृंगार निराले
उनका मन गुदगुदा रहे थे, उन्हें रूप का
दर्शन करने वाली आँखें नहीं मिली थीं,
उनको ज्ञान नहीं था कुछ भी धूप का
उनकी अनुभव की कलियाँ भी नहीं खिली थीं।
वह कलंक धो दिया, सहज मैंने बना दिया
कविता को। उसका स्वाभाविक सरल उजाला
दिपता है आँखों में खुबता है, जना दिया
जो जानना सभी को था, पहना दी माला।
सीधे सादे सुर में उर के गान सुनाये,
मन के करघों पर रेशम से भाव बुनाये।□

केदारनाथ

बैल

मैं नहीं जानता अब भी उसकी ज़रूरत है
या नहीं
लेकिन वह लौट रहा है
डूबते हुए सूरज की तन्दूरी रोटी से
बेखबर
सिर्फ हवा की नमी और घास का गट्ठर
अपनी पीठ पर लिये हुए
जैसे पत्थर का ढोका पहाड़ से
लुढ़का दिया गया हो

वह चल रहा है और सिर्फ एक पगडण्डी
उग आई है जो उसकी पूंछ की तरह
उसे हाँके लिये जा रही है

एक गन्ध आ रही है
और वह नहीं जानता
कहाँ से
लेकिन एक गन्ध आ रही है
और ढोल बज रहा है
और जंगल में पेड़ काटे जा रहे हैं
और ममन उसके खुरों को कुचल रहे हैं

वह ज़रा सा हूँफता है
उसके कान खड़े हो जाते हैं
यह भूसे की खुशबू है—वह अपने आप से कहता है
और एक नयी उम्मीद के साथ
अपने पूरे शरीर को
बस्ती की नींद और गरमाहट पर

छोड़ देता है
जलती हुई आग
और ऊंघते हुए किस्सों के बीच
वह एक ऐसा जानवर है जो दिन भर
भूसे के बारे में सोचता है
रात भर ईश्वर के बारे में।

अगला दिन
एक बिल्कुल नया दिन होता है
ताजा और ठण्डा

अचानक उसे चरागाहों की याद आती है
वह पूंछ उठाता है और बस्ती के इक्कीस
चक्कर लगाने के बाद
पाता है—वह ठीक अपने हल के
सामने खड़ा है

उसे बेहद खुशी होती है
पहली बार वह अपने माथे पर
अपने शानदार सींगों का होना
महसूस करता है और दूनी ताकत के साथ
जुए के नीचे
अपनी गर्दन रख देता है

सिर्फ
उसके उठे हुए सींग
सिवानों में चमकते रहते हैं
सिवानों तक। □

मैदान में बच्चे

वे आये और मेरे भीतर
खड़े हो गये

मैंने महसूस किया मैं घास भरे मैदान की तरह
फैलता जा रहा हूँ

उन्होंने मुझे देखा
और वे खुश हो गये

उन्हें एक मैदान की जरूरत थी
और वह मैं हो गया था
उन्हें एक गेंद की जरूरत थी
और वह मैं हो सकता था

उन्होंने मुझे देखा
और उनके पैरों में हरकत होने लगी
उन्होंने मुझे छुआ
और मैं उनकी हँसी और चीखों के पार
उछल रहा था

जब मैं गिरा तो मैदान नहीं था
सिर्फ उनके पैर थे
जो मेरा इन्तज़ार कर रहे थे

गेंद कहाँ है—एक ने पूछा
दूसरे ने कुएँ की ओर इशारा किया
तीसरे ने झाड़ी की ओर

मैंने देखा—वे धीरे धीरे
कुएँ से झाड़ी की ओर बढ़ रहे हैं
झाड़ी से शहर की ओर
उनके मुक्के तने हुए थे

आखिर गेंद—गेंद कहाँ है
वे चिल्ला रहे थे

और मुझे आश्चर्य हुआ
गहरा दुःख कि मैं वहीं खड़ा था
और वे मुझे देख नहीं रहे थे □

जाडों के शुरू मे आलू

वह जमीन स निकलता है
और सीधे बाजार म चला आता है

वह उसकी एक ऐसी क्षमता है
जो मुझे अक्सर दहशत स भर देती है

वह आता है और बाजार म भरने लगती है
एक अजीब सी धूम
अजीब सी अफवाह

मैं देर तक उसके चारो ओर घूमता हूँ
और अत म उसके सामने खडा हो जाता हूँ
मैं छूता हूँ किले की तरह ठोस उसकी दीवारें

मैं उसका छिलका उठाता हूँ
और झाककर पूछता हूँ—मेरा घर
मेरा घर कहाँ है ।

वह बाजार म ले आता है आग
और बाजार जब सुलगने लगता है
वह बोरो के अदर उछलना शुरू करता है
हर चाकू पर गिरने के लिये तत्पर
हर नमक म घुलने के लिये तैयार

जहा बहुत सी चीज़ें
लगातार टूट रही है
वह हर बार आता है
और पिछले मौसम के स्वाद से
जुड जाता है । □

सूर्यास्त

मैंने देखा पानी
सुंदर साफ चमकता हुआ पानी मैंने देखा
और मैंने खुद से कहा—पानी का अर्थ है
सोचना
आदमी का नम्र होना
पानी का अर्थ है

सिर्फ पेड़ का हरा होना
पानी का अर्थ कदापि नहीं है

पक्षियों का एक झुंड
मेरे ऊपर से उड़ा जा रहा था
मैंने कहा कल—
कल यहीं पर मिलूँगा
अगर समय रहा
और मेरी खाल मेरे शरीर से इसी तरह चिपकी रही
यहीं पर मिलूँगा

मैंने सूरज को देखा
मैंने एक लम्बी और सफेद दाढ़ी देखी
जिसे सूरज लगाये हुए था। □

आज की कविता विचार

खंड चार
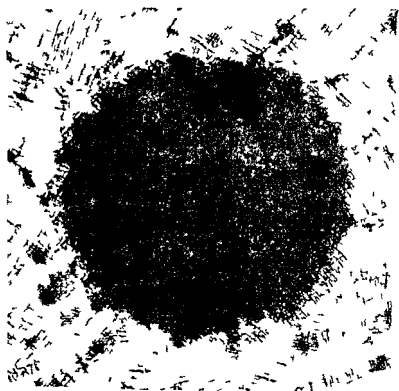
राजकुमार शर्मा
नंदकिशोर नवल
प्रभातकुमार त्रिपाठी
आनन्द प्रकाश
कमला प्रसाद
निर्मल शर्मा
शिवमंगल सिद्धान्तकर
सुधीश पचौरी

डा० राजकुमार शर्मा

हिन्दी कविता पिछले दस वर्ष

"राजनीति के प्रति निष्ठा की मांग साहित्यकार के प्रतिबधन (रजिमेण्टेशन) की मांग है जिसका दृढता से विरोध किया जाना चाहिए। जहा तक मैं समझता हूँ, नयी कविता और परिमल' ने पिछले दो दशको मे मुख्यतया अब तक यही किया है" (नयी कविता)। 'नयी कविता' के सम्पादक और उसके स्वत प्रतिष्ठित सिद्धातकार डा० जगदीश गुप्त की यह स्वीकारोक्ति नयी कविता के विशिष्ट चरित्र और उससे जुडे कवियो की उस खास वैचारिक भूमिका की ओर इशारा करती है जिसे वे जाने अजाने अपने समय की शासक वर्गीय राजनीति के अनुशासन के तहत निभा रहे थे। सदभ साफ हो जाना चाहिए कि ये पक्तियाँ गुप्त जी ने सातवे दशक के मध्य म उभर रही उस 'नव प्रगतिशील कविता के विरोध मे लिखी है जो पीडित मानवता के पक्ष और मुक्तिकामी ताकता के समथन की प्रतिबद्धता, घोपित या अघोपित रूप मे स्वीकार कर, उस व्यवस्था का उन्मूलन चाहती थी जिसके कारण व्यक्ति अभावो की यत्रणा झेलता है। साहित्य के पक्ष मे राजनीति विरोध का यह रूप और अधिक खुलता है धमवीर भारती के उस लेख मे जो मई १९६७ की 'सारिका' मे 'चिकनी सतह वहत आदोलन' शीपक से प्रकाशित हुआ था। अपने इस लेख मे भारती ने टामस मान के इस कथन को सदभ से काट कर पेश किया था, समाज ? साफ साफ क्यो नही कहते, कलाकार और राजनीति, क्योकि आज तो समाज शब्द एक हल्का सा पर्दा है—राजनीतिक मतव्य को छिपाने का'—इस कथन से भारती जी ने जो निष्कप निकाला वह यह है कि राजनीति के विरोध ने 'बहुधा मनुष्य की आन्तरिक अनुभूति और उसकी एतिहासिक सम्पत्ति के नये आयाम उदघाटित किये है।'

नयी कविता का राजनीति विरोध खुले तौर पर उस राजनीति का विरोध था जो समाज से और उसको बदलने की प्रक्रिया से जुडती थी। राजनीति का मतलब यहाँ विपक्ष की राजनीति था और वह भी वामपथी राजनीति। राजनीति विरोध की इस धारणा के पीछे जहा एक ओर शीतयुद्ध की अन्तर्राष्टीय राजनीति का सीधा प्रभाव था वही दूसरी तरफ आजादी के बाद निरतर विकास पा रहे उस मध्यवग के भ्रम भी मौजूद थे जो आजादी की लडाई का पूरा श्रेय पूजीपति वग की प्रतिनिधी काग्रेस को देते हुए उसे एक लम्बे समय तक जनता के हिता का

हिन्दी कविता : पिछले दस वर्ष

'राजनीति के प्रति निष्ठा की माँग साहित्यकार के प्रतिबंधन (रेजिमण्टेशन) की माँग है जिसका दृढ़ता से विरोध किया जाना चाहिए। जहाँ तक मैं समझता हूँ, नयी कविता और परिमल ने पिछले वर्षों में मुख्यतया अब तक यही किया है" (नयी कविता)। 'नयी कविता' के सम्पादक और उसके एक प्रतिष्ठित सिद्धांतकार डा० जगदीश गुप्त की यह स्वीकारोक्ति नयी कविता के विशिष्ट चरित्र और उससे जुड़े कवियों की उस खास वैचारिक भूमिका की ओर इशारा करती है जिसे वे जाने अजाने अपने समय की शासक-वर्गीय राजनीति के अनुसार से तय किया रहे थे। सन्दर्भ साफ हो जाना चाहिए कि ये पंक्तियाँ गुप्त जी ने साठोत्तर दशक के मध्य में उभर रही उस 'नव प्रगतिशील कविता' के विरोध में लिखी हैं जो पीड़ित मानवता के पक्ष और मुक्तिकामी ताकतों के समर्थन की प्रतिबद्धता, घोषित या अघोषित रूप में स्वीकार कर, उस व्यवस्था का उन्मूलन चाहती थी जिसके कारण व्यक्ति अभावों की यंत्रणा झेलता है। साहित्य के पक्ष में राजनीति विरोध का यह रूप और अधिक खुलता है धर्मवीर भारती के उस लेख में जो मई १९६७ की 'सारिका' में 'चिकनी सतह वहन आन्दोलन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। अपने इस लेख में भारती ने टामस मान के इस कथन को सन्दर्भ से काट कर पेश किया था, 'समाज ? साफ साफ क्यों नहीं कहते, कलाकार और राजनीति, क्योंकि आज तो समाज शब्द एक हल्का सा पर्दा है—राजनीतिक मतव्य को छिपाने का'—इस कथन से भारती जी ने जो निष्कर्ष निकाला वह यह है कि राजनीति के विरोध ने 'बहुधा मनुष्य की आतंरिक अनुभूति और उसकी ऐतिहासिक सम्पृक्ति के नये आयाम उद्घाटित किये हैं।'

नयी कविता का राजनीति विरोध खुले तौर पर उस राजनीति का विरोध था जो समाज से और उसको बदलने की प्रक्रिया से जुड़ती थी। राजनीति का मतलब यहाँ विपक्ष की राजनीति था और वह भी वामपंथी राजनीति। राजनीति विरोध की इस धारणा के पीछे जहाँ एक ओर शीतयुद्ध की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सीधा प्रभाव था वहीं दूसरी तरफ आजादी के बाद निरंतर विकास पा रहे उस मध्यवर्ग के भ्रम भी मौजूद थे जो आज़ादी की लड़ाई का पूरा श्रेय पूँजीपति वर्ग की प्रतिनिधी कांग्रेस को देते हुए उसे एक लम्बे समय तक जनता के हितों का

प्रतिनिधि मानता रहा और उसकी नीतियों के तहत तेजी से होने वाले पूँजीजीवी वर्ग के विकास को जनता और राष्ट्र के विकास के रूप में परिभाषित करता रहा था। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर शासक वर्ग का सोच ही उस पर हावी था। यह सोच सुविधाजनक था और निरापद भी। व्यक्तिगत जीवन के स्तर पर भी कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश नए कवि व्यवस्था से जुड़े हुए थे। 'अज्ञेय' जैसा घोर व्यक्तिवादी अहमन्य लेखक 'नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ' का सम्पादक बनकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा था। हर साँस में लेखक की स्वतन्त्रता और राजनीति विरोध की दुहाई देने वाले नये कवि शासक वर्ग की साम्यवाद विरोधी पूँजीवादी राजनीति के अमूर्त शिकंजे में कैद थे और इस सुविधाजनक गुलामी को साम्राज्यवादी देशों से आयातित शब्दावली में आदर्शीकृत कर रहे थे। स्टीफेन स्पेंडर की वह पिंजड़े वाली तुलना पश्चिम के नये कवियों की तरह इन पर भी पूरी तरह से लागू हो रही थी। स्पेंडर ने कहा था कि 'इस युग की सर्जनात्मक प्रतिभा शीशे की सलाखों से बने एक पिंजड़े में बंद है, जिसमें उसे केवल अपना ही प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, कल्पना द्वारा अपने से बाहर के यथार्थ जगत में प्रवेश करने के उसके सारे रास्ते बिल्कुल असंभव बन चुके हैं।'

इन कवियों का रचना संसार एक सिम्प्टम जैसी बंद संरचना वाला स्वायत्त मध्यवर्गीय संसार था जो अनुभव की अद्वितीयता के नाम पर गलत अनुभवों का काल्पनिक जाल बुन रहा था। कला और साहित्य की स्वायत्तता का नारा देकर ये कवि समाज की विविध जटिलताओं और व्यवस्था के मूलभूत अन्तर्विरोधों से जनता का ध्यान हटाकर उसे अवनमित (एलियनेटेड) अनुभवों के ऐसे अजनबी संसार में भटका देने की कोशिश कर रहे थे ताकि वह सामाजिक संघर्ष के जीवित संदर्भ से बिलकुल कट जाये। इस रचना संसार में व्यक्ति और समाज, उसके अन्तर्जगत और बाह्य परिवेश को एक दूसरे के खिलाफ खड़े एक-दो पक्षों के रूप में चित्रित करने की चेष्टा की गयी जैसे उनके बीच कोई अनुल्लंघ्य विभाजन रेखा है। अंतर्जगत का बाह्यजगत के प्रभाव से बचाना तथा व्यक्ति की समाज से रक्षा नये कवियों के लिए नैतिक कर्तव्य जैसी आवश्यकता थी। अपने विशिष्ट चरित्र में यह रचना संसार एक ओर पूँजीवाद की गिरफ्त में राज्य सत्ता की बिना नक्‍र-नखरे के स्वीकृति, दूसरी ओर साम्यवाद और संगठित सामाजिक चेतना के विरोध तथा तीसरी ओर जनद्रोही व्यक्तिवादी दर्शन के निर्माण में बंधा हुआ मध्यवर्गीय अनुभव संसार था। इस संसार का कवि जब सामाजिक संघर्ष की बात भी करता था तो मध्यवर्ग के निजबद्ध दायरे में ही घूम कर रह जाता था और जब वह व्यापक दृष्टि पाने की कोशिश करता भी था तो जिन्दगी से अपनी सामग्री प्राप्त करने के बजाय अप्रासंगिक संदर्भों में होने वाली घटनाओं और विचार

सरणिया से अपनी कविता गढने लगता था। एसी ही प्रकृति के तहत कुवर नारायण मत्यु और जीवन के प्रश्ना की अथवत्ता की परीक्षा उपनिषत्कालीन नचिकेता के मानव लाक मे करते ह, 'अन्य' 'आगन के पार द्वार मे आत्मा के रहस्यलोक और 'उत्तर प्रियदर्शी' म पौराणिक किवदन्ती के नरक मे 'करुणा प्रभामय' का पावन आलोक देखत है। इस प्रकार मानव नियति के आधारभूत प्रश्ना को ये एक ऐसा कालातीत नैरन्तय प्रदान कर देते है जिसमे उन प्रश्नो की तात्कालिक साथकता का सदभ लुप्त हो जाता है और एक तरह से य प्रश्न जिस सदभ और जिस भूमि से उठन चाहिए और जिस भूमि मे उनका सामना किया जाना चाहिए वह न होकर एक 'नो-मैंस-लैण्ड' से उठन वाले प्रश्न हो जात हैं, अर्थात वे सनातन शाश्वत प्रश्न बन जाते ह, और शाश्वत प्रश्नो के उत्तर क लिए कोई यथाथ भूमि, कोई जीवित परिवेश आवश्यक नही होता।

नयी कविता के दौर मे मुक्तिबोध ही ऐसे कवि थे जिन्होने समूचे नवलेखन के पीछे काम करने वाली जनविरोधी राजनीति की साजिश को पहचाना था। दो वास्तविक वर्गो के बीच मध्यवग की अवास्तविकता को वे अच्छी तरह पहचानते थे। 'भूतो की बारात म कनात से तनते' तथा 'बिस्तर की तरह बिछते' अथवा मत्ताधारी 'रावण' के घर 'पानी भरने वाले' रक्तपायी वग से नाभिनालबद्ध इस मध्यम वग की व्यवस्था के मूल्यो से व्यवस्थित आकाक्षाओ, कलाबाज चालाकियो, सभ्रमो और सीमाओ को वे बखूबी समझत थ इसीलिये उन्होने साफ साफ कहा था

> 'कविता म कहन की आदत नही पर कह दू
> वतमान समाज चल नही सकता
> पूजी से जुडा हुआ हृदय बदल नही सकता
> स्वातत्र्य व्यक्ति का वादी
> छल नही सकता मुक्ति के मन का
> जन को'

सातवें दशक के शुरुआती दौर म ही नयी कविता की आभिजात्य गरिमा टूटने लगी थी। नये कवियो के प्रतिष्ठित होने, सरकारी एव पूजीवादी प्रतिष्ठाना एव व्यावसायिक पत्र पत्रिकाओ म नय कवियो को महत्वपूण स्थान मिलने के साथ साथ उनके विरोध मे बहुत सी आवाजें उठने लगी। महानगरा से लेकर छाटे छोटे कस्बो शहरो तक से दजना छोटी पत्रिकाएँ निकलने लगी। बहुत से युवा कविया की रचनाए इन लघुपत्रिकाओ और स्वतन्त्र काव्य सकलना के माध्यम स

सामने आयी कविता के अनेक नये नामो, सगठनो और सम्मेलनो के माध्यम से युवा प्रतिभाये नयी कविता के विरोध म खडी हो गयी। 'अकविता', 'सनातन सूर्योदयी कविता', 'युयुत्सावादी कविता', 'विद्रोही कविता', 'नूतन कविता', 'बीट कविता' नगी कविता' ठोस कविता', 'सहज कविता' आदि से लेकर 'लिम्बादल मतवादी तक लगभग पचास कविता नामा की चर्चा डा० जगदीश गुप्त न अपने विसिम किसिम की कविता शीषक वाले लेख म की है। ये सभी नाम 'नया कविता के विरोध म सामने आये थे, सातवें दशक के उत्तराद्ध के शुरू हाते होत नामा की इस भीड मे नयी कविता' खो चुकी थी, प्रयोगवाद और नयी कविता के मसीहा अज्ञेय' की मिथ टूट चुकी थी, और मुक्ति प्रमग' का नायक राजकमल चौधरी नया मसीहा बन चुका था। राजकमल स्व स्थिति को बडी सच्चाई से यो सामन रखता है

> कामोत्तेजना म अपनी रक्त नलिकाओ के विपरीत प्रवाह मे
> और कविता मे जटिल थे किंतु लाछित अवाछित भी थे
> कोई काव्य खड या प्रतिमा बनाने के योग्य नही थे अनुभव
> सगीत रग, पीडाए मेरे अतराल मे
> रोग दाघ परिस्थितिया

राजकमल की यह आत्मालोचना उस समूची काव्य प्रवत्ति की सीमाओ को स्पष्ट कर देती है जहा कविता के नाम पर रग मे अल्कोहल है, भाषा मे केवल बीते हुए गलित व्रण, केवल चीत्कार ही मिलते है। राजकमल का कवि व्यक्तिगत यथाथ के कुत्सित पक्षा को पूरी भयावहता मे चित्रित करत हुए भी अपनी समझ और निणयशीलता म पाजीटिव स्तर पर व्यापक सामाजिक सदभ से जुडना चाहता है– सबके लिये, सबके हित मे राजकमल चौधरी चला गया है हस्पताल।' मृत्यु से पहले और कविता से पहले वह फैसला करता है कि 'हम लोगा को अब शामिल नही रहना है / इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खतम कर देन की/ साजिश म। (प्रसग)

सातवें दशक के बीच भारतीय राजनीति और जन जीवन म गहरे उतार चढाव आये। सूखा भुखमरी, निम्नवग का असतोष, जन आदोलना म तेजी, प्राता के विघटन, शासक पार्टी म आतरिक कलह, रुपये क अवमूल्यन, औद्योगी करण मे अवरोध ६७ के चुनाव मे अनेक प्राता मे काग्रेस का पतन गैर काग्रेसी सविद सरकारें बनना और आपसी घटकवादी झगडो से बार बार टूटना, दल बदल, महगाई बरोजगारी का बढना आदि बहुत सी घटनाए थी जिनसे आम

आदमी के मानस में अनिश्चय और अराजकता की भावनाएं सिर उठाने लगी। समकालीन राजनीति के प्रति उसका पहला स्वीकारात्मक और तज्जन्य उदासीनता का रुख बदला। व्यवस्था के प्रति उसके मन में अस्वीकार, नफरत, हस्तक्षेप और आक्रोश की अबूझ भावना सुगबुगाने लगी। तत्कालीन भारतीय जीवन की इन्हीं स्थितियों ने 'सिसिम सिसिम की' कविताओं के लेखकों को अपने अपने ढंग से सामाजिक यथार्थ के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने के लिये प्रेरित किया—लेकिन जीवन पद्धति और विचार धाराओं के अन्तरों की विनिष्टता के साथ साथ। अन्यायपूर्ण सामाजिक स्थितियों और पाखण्डपूर्ण जीवनादर्शों से व्यक्तिगत तौर पर निपटने की बेचैनी इस दौर में खूब व्यक्त हुई जो अन्तत अकेले व्यक्ति की अव्यवस्थित एवं अराजक प्रतिक्रियाओं में तमतमा कर ही रह गयी। सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रति अकेलेपन की यह प्रतिक्रिया अलग अलग रूपों में व्यक्त हुई है। कहीं इसका रूप निषेधवादी अराजकता का है कहीं आत्मपीडा का, कहीं पाशविक भोग एवं हिंस्र भावना का, कहीं अहं के विस्फोट का तो कहीं युयुत्सा और शांति भावना का। लेकिन यदि गौर से देखें तो इन सभी प्रतिक्रियाओं में थोडी बहुत मात्रा सिनिसिज्म की मिल जायेगी। सिनिसिज्म में पैसिव और एक्टिव दोनों संभावनाएं होती हैं 'सिनिसिज्म में एक ओर तो अद्ध सत्यों के रूप में जीवित परम्परागत मूल्य बोध तथा इसे वहन करने वाली सामूहिक सामाजिक चेतना की मूढता के प्रति आक्रोश भाव रहता है और दूसरी ओर नये जीवन मूल्यों के प्रति स्पष्ट विजन की कमी या हीनता बोध। सिनिसिज्म वस्तुत इस दुहरी स्थिति की व्यक्तिचेतना के स्तर पर बाह्य अभिव्यक्ति है। यह किसी मूल्य की रचना नहीं करता, उसकी शक्ति युगगत निषेध को करने में ही व्यक्त होती है।' (नयी कविता)

इस दौर में अकविता की खूब चर्चा रही। 'अकविता' में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, मोना गुलाटी के साथ साथ धूमिल, राजीव सक्सेना, लीलाधर जगूडी और कुमार विकल भी छपे थे—निगेटिव और पाजीटिव छोरों की तरह। पहला पक्ष वह था जो 'अब सब कुछ असाध्य है / सोचता हूं, सोचना ही छोड दूं' की विचारहीन शून्यवादी समझ लेकर 'देह की राजनीति' का मोहरा बन कर, 'जीभ और जांघ के चालू भूगोल' को भाषा में उतार रहा था। सक्रिय तौर पर जीवन से जुडी समझ के अभाव में नयी कविता के आभिजात रचना संसार के खिलाफ नशे जैसी तीव्र अंध प्रतिक्रिया में कुत्सित एवं भद्देश अनुभवों, मुंहफट स्पष्टता, गुह्यांगों और अश्लील क्रियाओं का चालू नाम लेने वाली गाली गलौज की भाषा, विचार विरोधी मूल्यहीनता तथा गर्हित यथार्थ की मूर्त कुरूपता से भरा एक नया संसार इन अकवियों ने रच लिया था। इसी

रचना ससार का एक दूसरा छोर भी था जहा समानान्तर रूप स एसी कविता रची जा रही थी जो अपने रचनात्मक व्यवहारो म 'एक समझदार चुप' और 'एक इनकार भरी चीख' के बीच से रास्ता निकालती हुई 'शब्दा की दुनिया म/ यातना के खिलाफ मुह खोल' रही थी।

अकविता ने अपने इस पाजीटिव पक्ष मे अपने समय के यथाथ की विरूपता और अमानवीय सामाजिक सम्बन्धा को सीवन का पूरी निममता स उधेडा, पतनोन्मुख पूजीजीवी सस्कृति की अनक विरूपताओ का भदस जीवन स्थितियो के बीच रखकर उजागर करन की कोशिश की, लेकिन यथाथ की पूरी और सही समझ दने वाले परिप्रेक्ष्य के अभाव तथा विचारधारा की अनिश्चितता के कारण इसके अधिकाश प्रयास प्रभाव की विपरीत दिशा मे चले गये। निषेधवादी अराजक दृष्टि ने इस रचना कम को उद्धत अह की उस बडबोली शाब्दिक अराजकता म बदल दिया जो अपने विपक्ष को ठीक से चीन्हे बिना, शून्य को ललकारती हुइ तेज मुहावरो का तरकश खाली करती रही। व्यक्तिवादी अह भावना ने उसे सामूहिक मुक्ति के लिए सघष की किसी सगठित प्रक्रिया से नही जुडन दिया। इस काव्य प्रवत्ति न अधिकतर कवि के भीतर उस बचकाने श्रेष्ठता बोध को उकसाया जो उसे अपने आपको सभी वर्गों से ऊपर सबको नसीहत और फटकार देने वाला, जनता का स्वयभू मागदशक मानने के भ्रम म बाधता था। इसी बचकानी समझ के आधार पर उसन सामाजिक सघष को दो विरोधी वर्गों की लडाई की जगह अपन और समूची व्यवस्था के बीच की लडाई के रूप म परिभाषित किया। यह समझ 'हम' की अपेक्षा 'मैं' पर अधिक जोर देती थी सामाजिक परिवतन की प्रक्रिया को ऐतिहासिक गति के वस्तुपरक नियमों से अनुशासित न मानकर व्यक्तिगत स्थितियो से जुडी प्रकृत अ... सक्रिय दबती थी 'जो कुछ कह सकू वह सबसे बडा साहस है / जो ... इस वह सबसे बडा हाथ है / जो कुछ पहनकर उत (जगूडी 'नाटकजारी है')। इतिहास को दूर स वाली यह समझ इतिहास ... सामा स्वत स्फूत मानती हुई ... तवादी 'मै लोगतम करा / औ ... च लुढकना हुआ / यह तभी

जुझारू तेवर की इन हावी रही है। यह अनिश्चि समझ के अभाव की देन है। इस दौर के कविया की प्र

और अतिरंजित हो गयी है कि उनसे अन्तर्वस्तु की कोई सार्थक वैचारिक बुनावट नहीं उभरती। वैचारिक संघटन का यह अभाव, यथार्थ के प्रति उनकी प्रति-क्रियाओं को ठोस आधार पर व्यवस्थित कर, विशिष्ट संवेदना को एक दृष्टिबद्ध अन्विति देकर रचनानुभव की बनावट को कोई आंतरिक संगति और सार्थकता नहीं दे पाता। इसलिए इनके रचनाकर्म में वह आत्मविश्वास बहुत कम झलक पाया है जो अपने समय के यथार्थ को उसकी नींव पर पकड़ सकता है। इनकी रचनाएं जगह जगह फ्लेशेज में तो प्रभावित करती हैं पर अपनी समग्रता में कोई वैसा अन्वित प्रभाव नहीं डाल पाती जैसा कि मुक्तिबोध की कविताओं के साथ होता है। रचनाकर्म की इस असफलता के पीछे वास्तव में वह निम्न मध्यवर्गीय समझ ही सक्रिय रही है जो अपने विभ्रमों से परे जाकर, वास्तविकता को न तो पूरे तौर पर देखना ही चाहती है और न ही बदलना।

इस दौर में साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध की बात नये संदर्भों में फिर से उठी। इस रिश्ते पर एक लम्बे अंतराल के बाद नये सिरे से विचार हुआ। राजनीति को लेकर इस समय भी दो दृष्टिकोण थे—लगाव और बिलगाव के। राजनीति विरोध दो रूपों में सक्रिय था नयी कविता की भाववादी व्यक्ति केन्द्रित परम्परा के अवशिष्ट लेखक (अज्ञेय-भारती से लेकर श्रीकांत वर्मा तक) तथा 'किसिम किसिम की' कविताओं के बहुत से मतिभ्रमग्रस्त लेखक, सचेत और अचेत दोनों रूपों में राजनीति का विरोध कर रहे थे लेकिन एक अंतर के साथ नयी कविता से जुड़े लेखक अब भी सचेत रूप से साम्यवाद विरोधी राजनीति के तहत सामाजिक परिवर्तन के हक में लड़ने वाली राजनीति का विरोध कर रहे थे। उनका विरोध सचेत रूप में एक वर्ग की राजनीति के पक्ष में, दूसरे वर्ग की राज नीति का विरोध था। जबकि बहुत से दूसरे कवि वर्गीय राजनीति की समझ के अभाव और मूल्य मूढ़ता की स्थिति में, वर्तमान बदहाली से ऊब कर सभी प्रकार की राजनीति को नफरत की नजर से देखते हुए राजनीति मात्र का विरोध कर रहे थे। दूसरी ओर वह दृष्टि भी सक्रिय थी और निरंतर विकास पा रही थी जो समकालीन राजनीति और उससे जुड़ी व्यवस्था को अर्थहीन और निकम्मा मानती थी और उसे सही राजनीति और बेहतर व्यवस्था में तब्दील होते देखना चाहती थी। आजादी और लोकतन्त्र के प्रति उसके भ्रम टूट चुके थे। मौजूदा व्यवस्था के प्रति तीखे प्रकार की भावना उसे बेचैन कर रही थी

> क्या दिया तुमने ? महज जयहिंद
> फक्त फाकाकशी, आकडे, बस आसमानी आकड़े और गुत्थम गुत्था
> राशन की कमी कतारें, बेरोजगारी——?
>
> केदारनीप्रसाद चौरसिया

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है----धूमिल

दरअसल संसद एक ऐसी स्त्री है जिसके गर्भाशय में बहुमत का ट्यूब फिट है। इसी कारण वह फलवती नहीं हो पाती। तभी वातों की लड़ाई तो खूब होती है लेकिन उसका कोई फल नहीं निकलता। होता वही है जो मंजूर सरकार होता है। फिर मजा यह है कि सांसदिकगण मजे में फिडल' बजाते रहते हैं और रोम जलता रहता है मंत्रीशाही, अफसरशाही और सेठशाही का त्रिकोण देश की सारी पूंजी को अजगर की तरह लीलता रहता है।' ---गजेन्द्र तिवारी

इस बिन्दु पर आकर विद्रोही युवा वर्ग राजनीति विरोध की बुर्जुआ साजिश को पहचान चुका था। ('संदर्भ' का प्रतिबद्धता विशेषांक, 'रूपाम्बरा' के अधुनातन कविता अंक मे डा० माहेश्वर का लेख, 'युयुत्सा', 'वातायन' और 'कविता' में छपे लेख द्रष्टव्य है)। 'कविता' पाच में अनिल कुमार ने लिखा था---'इधर कुछ समय से राजनीति या किसी प्रकार की पक्षधरता को नकारने वाला स्वर बराबर मुखर होता जा रहा है। बड़ी प्रगल्भता से यह स्वर जमात जोड़ता जा रहा है और जहां कोई स्वर एकाकी न रहकर जमात जोड़ बनता है तो उसकी अपनी पक्षधरता स्पष्ट होने लगती है। दिशाहीन चिन्तन, लक्ष्यहीन लेखन, राजनीति रहित दृष्टिकोण की परिणति व्यक्ति की खोज अर्थात निजी स्वार्थ में होती है।'

अब युवा लेखक विद्रोह और जीवन पद्धति के तालमेल की जरूरत पर बल देने लगा था---"मौजूदा स्थिति को देखते हुए ही युवा लेखकों को निर्णय लेना होगा कि उन्हें व्यवस्था के उन पालतू कुत्तों में शामिल होकर ग्रैण्ड होटल की खिड़की में फेंकी जाने वाली हड्डियों का इंतजार करना है या उसे शोषण-तन्त्र को तोड़ने वालों के साथ होना है (कंचन कुमार)। इस बदले संदर्भ में कविता, विरोध की राजनीति के और अधिक नजदीक आ रही थी। जाहिर है कि कविता और राजनीति के बीच जुड़ता हुआ यह रिश्ता भारती और जगदीश गुप्त जैसे कवियों को बहुत अखर रहा था। इसीलिए नये दौर के युवा लेखन मे उनकी शिकायतें और नाराजगी बढती ही जा रही थी।

सातवें दशक के अंत तक तेजी से परिवर्तित होते हुए भारतीय सामाजिक

राजनीतिक परिदृश्य की सापक्षता म असतोष म वृद्धि के साथ साथ जन आदोलन तज हो रह थे और निम्न मध्यमवग म समाजवाद म आस्था के साथ राजनीतिक चेतना का प्रसार हो रहा था।

वामपथी एव जनवादी मेहनतकश जनता के विशाल आन्दोलना तथा नक्सल वादी आन्दोलनो ने एकबारगी पूरे देश की मध्यमवर्गीय जनता को झकझोर दिया था। नये लेखको म मार्क्सवाद के प्रति रुझान तजी पकडन लगा था। सातवे दशक के आरभ एव मध्य म 'अस्वीकृति के नवोन्मेष' की धुधली सामाजिक चेतना लेकर चलन वाली कविता अब अनेक सोपानो को पार करती हुई क्रांति के द्वार पर दस्तक दे रही थी। 'अपने हाथो म बस तज धार वाले चाकू और जलती हुई मशाल की आवेशजन्य जरूरत' महसूस करने वाला कवि अब अधिक विकसित राजनीतिक चेतना और वैचारिक तैयारी स लैस होने लगा था। मजदूर वग एव ग्रामीण जीवन सन्दर्भों म निहित सामाजिक सम्बन्धो और अन्तद्वन्द्वो को अन्तवस्तु के रूप म ग्रहण करने की प्रवत्ति अब कवियो म बढ रही थी। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशर शील और त्रिलोचन जैसे पुराने प्रगतिशील कवि नयी परिस्थितियो की नयी समझ के साथ अधिक पैनी रचनाएँ लेकर जनवादी कविता के इस नये आदोलन म शरीक हो रहे थे। आठवें दशक के प्रारभ तक जनवादी कविता हिन्दी कविता की मुख्य धारा बन गयी थी। इस दशक म कुमारेन्द्र, नानन्दपति आलोकधन्वा श्रीराम तिवारी शलभ श्रीराम सिंह धूमिल, कातिमोहन, कुमार विकल, मनमोहन रमेश रजक, ऋतुराज, वेणुगोपाल, विजेन्द्र, पकज सिंह, आनन्द प्रकाश, चचल चौहान राजकुमार सैनी, राजीव सक्सेना, विजेन्द्र अनिल, नमिप्रकाश, श्रीहष, अक्षय उपाध्याय, जुगमदिर तायल, विनय श्रीकर, कौशल किशोर, अश्वघोष, नचिकेता, धनजय सिंह, मोहदत्त, नद भारद्वाज निमल शर्मा, केवल गोस्वामी, निरजन, अरुण प्रकाश आदि कवि बडी सख्या म इस जनवादी काव्यधारा से जुडते गये। देवी अब तो बद करो, हरिजन गाथा (नागार्जुन), लोकवार्ता तथा मनबोध (श्रीराम तिवारी), जनशक्ति (विजेन्द्र), जगलगाथा (वेणुगोपाल), जनदेव स्फटिक (जगूडी), लाशा का बयान (श्रीहष), कृष्णकान्त की खोज मे दिल्ली यात्रा (दूधनाथ सिंह), गोली दागो पोस्टर (आलोक धन्वा), रेलगाडी, सूर्योदय, नगे सवालो के सामने (मनमोहन), एक सामरिक चुप्पी (कुमार विकल), नगई महरा (त्रिलोचन), फैसला (विजेन्द्र अनिल), अपना वधवा (नानेन्द्रपति) नीम का रुदन (चचल चौहान) चवरी गाव, मुक्तिगाथा, प्रक्रिया (कुमारेन्द्र), आग की गरज (नद भारद्वाज), देश प्रेम (शलभ), माँ के लिए (निमल शर्मा) आदि दजनो महत्वपूण कविताएँ इस बीच लिखी गयी।

इदिरा गाँधी द्वारा जून '७५ म आपातकाल की घोषणा इस आठवे दशक

की बहुत महत्वपूर्ण घटना थी जिसने लेखकों के ही नहीं, आम जनता के सामने भी शोषक व्यवस्था के क्रूर जनविरोधी चरित्र को खोलकर सामने रख दिया। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार छीन लिया गया और विपक्ष के विरोध को कुचल दिया गया। यह हमला मुख्य रूप से जनवादी शक्तियों और उनकी गतिविधियों पर था। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सच्चे अर्थों में जनवादी लेखकों से ही छीनी गयी क्योंकि राजनीतिक विचार के स्तर पर वे ही सत्ता के फासिस्ट चरित्र को चुनौती दे रहे थे। बाकी तो राजनीति मात्र के विरोधी थे ही। उन्हें क्या खतरा हो सकता था। इस ऐतिहासिक घटना ने उन कवियों को, जो संसद और लोकतन्त्र की धारणा को ही निरर्थक समझ कर उसका मज़ाक उड़ा रहे थे, नये सिरे से सोचने को मजबूर किया। इस दौरान लिखी गयी कविताओं (उत्तरार्द्ध, युग परिबोध आवेग क्यों पश्यती आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित) में जहां एक ओर स्वतन्त्रता की अदम्य लालसा संयमित वस्तुपरक विरोध भावना तथा स्थितियों की गंभीरता के अहसास की चेतना दृष्टिगोचर होती है वहीं दूसरी तरफ गोपन के चतुराईपूर्ण लेकिन प्रभावी शिल्प के नये नये प्रयोग भी मिलते हैं। इस दौर में कविता अन्तर्वस्तु में ठोस अनुभव लेकिन शिल्प में कुछ-कुछ अमूर्तन की ओर झुकी। जनवादी गीतों के नये लोकधुनी प्रयोग इस बीच देखने को मिलते हैं। आपात्काल के समर्थक कवि तो इस दौर में एक भी सार्थक रचना प्रस्तुत नहीं कर पाये। आत्मविश्वासहीनता ने उन्हें समझ और अनुभव दोनों स्तरों पर कैफियत देने में चतुर व्यक्तिवादी रुझान से बोझिल कर दिया।

आपातकाल के बाद अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की वापसी के साथ ढेर सारी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। नयी शासक पार्टी ने जनता को नये मोहभंग दिए हैं। आम आदमी भी अब यह सोचने लगा है कि खोट कहीं न कहीं इस सामाजिक आर्थिक संरचना में ही है जिसके आधीन चल रही शासन-व्यवस्था के तन्त्र में घुसते ही सही लगने वाले व्यक्ति का सोच और व्यवहार भी गलत हो जाता है। सामाजिक जीवन की इन वस्तुपरक स्थितियों ने कवियों को बुनियादी समझ तथा कविता को गंभीर भावभूमि पर उतारा है। अनेक सशक्त रचनाएँ इस बीच प्रकाश में आयी हैं। आठवें दशक के नये जनवादी दौर के सभी कवियों और कविताओं के बारे में कहना यहां संभव नहीं है लेकिन कुछ सामान्य बातों का जिक्र जरूरी है।

इस दौर की जनवादी कविता की बहुत सी अच्छाइयों की ओर जहाँ इशारा किया जाता रहा है वहाँ इसकी कुछ कमजोरियों की ओर भी ध्यान खींचा गया है। इन समीक्षकों का कहना है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अब भी जनवादी कविता, कवि के मध्यवर्गीय संस्कारों की गिरफ्त से मुक्त नहीं

हो पायी है। अनेक कविताओं में कवि विचारधारा को अनुभव का स्थानापन्न बना कर पेश करता है। स्वाभाविक प्रक्रिया से हटकर वह विचारधारा और यथार्थ में ऊपरी तालमेल बैठाने की कोशिश करने लगता है। यथार्थ पर विचार-धारा का यह यान्त्रिक प्रयोग उसे सरलीकरण की ओर ले जाता है। सरलीकरण के इस शार्टकट से गुजर कर उसकी रचना प्रक्रिया सीधे क्रांतिकारी निष्कर्ष तक पहुँच जाती है जिसे वह कविता के अंत में सीधे सादे बखान देता है। और इस तरह की रचना क्रांतिकारी अन्तवस्तु और शब्दावली के भरपूर प्रयोग के बावजूद कविता नहीं बन पाती। इन कविताओं में चित्रित मजदूर या किसान और उनके संघर्ष कवि की बौद्धिक धारणा या भाववादी कल्पना का ही बोध अधिक कराते हैं। शोषित वर्ग के यथार्थ की आत्मपरक संदर्भों में यह व्याख्या और प्रस्तुति पूरे रचनानुभव को 'फेक' बनाकर प्रभावहीन कर देती है। प्रभातकुमार त्रिपाठी का यह कहना एक हद तक सही है कि चाहे वेणु गोपाल की 'जंगल गाथा' हो या आलोक धन्वा की 'गोली दागो पोस्टर'—उनका असर हमारे मूल्यबोध को झकझोरने वाला नहीं है, स्नायुतंत्र से अगर ये कविताएँ आगे जाती हैं तो सिर्फ विचार पर अटकती हैं। असली संग्राम तो मूल्य और संस्कारों के स्तर पर लड़ा जाना है और इस दिशा में हमारी युवा रचना अभी आरम्भ बिन्दु पर ही है। ज्यादातर रचनाएं जननायक की जुबान में अपनी भाषा रख देने की सफलता में संतुष्ट लगती हैं। (कथा)

नयी कविता की रचना प्रक्रिया की वह आम कमजोरी कुछ जनवादी कविताओं में भी संक्रमित दिखलायी पड़ती है जिसके अंतर्गत कवि परिस्थितियों की अनुभूति से प्रेरित दिखलायी नहीं पड़ता, उसकी प्रेरणा विचारों को सतही तौर पर अनुभव करने के प्रयत्न में स्फुरित होती है और तब जाकर काव्यात्मक स्थिति का निर्माण करती है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक समझ का अभाव, सामाजिक यथार्थ के विशिष्ट वस्तुपरक संदर्भ और रचनाकार की सामान्य चेतना के बीच एक गहरा अंतराल लाते हुए, केन्द्रीय प्रश्न को उसकी जमीन से, उसके अनुभवसूत्र से अलग कर देता है। यथार्थ के विशिष्ट बिम्ब देते समय कवि प्रभावित करता सा लगता है किन्तु उस यथार्थ के प्रति आलोचनात्मक रुख अख्तियार करते ही उसकी समझ की सीमा साफ होने लगती है। इस तरह अनुभव-पक्ष तथा चिंतन पक्ष की अलगावभरी समानान्तरता के कारण कविता की संरचना में बिखराव साफ तौर पर दिखने लगता है। यथार्थ के एक अनुभव से जोड़ते हुए किसी समग्र सामान्य अनुभव तक पहुँचने, उस सामान्य अनुभव से विशिष्ट सच्चाई को पहचानने तथा विशिष्ट सच्चाई से दृष्टि को पाने की प्रक्रिया यहां रुक जाती है। यहां कवि का रचनाक्रम आत्मपरक सन्दर्भों में इतना लिप्त हो

जाता है कि वह आत्म सजगता से आगे बढ़कर सामाजिक यथार्थ के दूसरे महत्व पूर्ण पक्षों के साक्षात्कार मे कतराने लगता है। आत्मपरक संदर्भों पर ही केन्द्रित होने की यह प्रवृत्ति उसकी दृष्टि को इतना निजबद्ध बना देती है कि उसका रचना कर्म अपने सामाजिक उद्देश्य मे पराजित हो जाता है। ऐसी रचनाओं मे हम जन जीवन के यथार्थ की अपेक्षा कवि की मानसिकता का ही परिचय अधिक पाते है। 'ऐसी कविताओ म बार बार पाठक के सामने कई रूपा म कवि स्वय आता है। इन कविताओं का नायक प्राय कवि का मैं ही होता है जो बराबर विशिष्ट बना रहता है और कविता का तुम, चाहे वह व्यवस्था हो या जनता प्राय बनावटी और अरूप-अनाम दिखाई देता है। इन कविताओ का 'मैं' सम्मोहित शहीद के रूप म प्रकट होता है।' (मैनेजर पाण्डेय)। 'युग परिबोध' के ऐसे कवियो के लिए कुमारेन्द्र की यह सलाह बहुत उचित है

> जरूरत पड़े
> तो मैं को निकालकर
> 'हम' को पोस्ता कर लेना चाहिए
> 'मैं' को 'हम' के लिए
> मिटा दिया जा सकता है
> कि मैं' के लिए 'हम' जरूरी-सबसे सही नाम है।

कुछ जनवादी कविताओ मे अमूर्तन की प्रतीकवादी प्रवृत्ति विशेष रूप स दिखलायी पडी है। बहुत सी जगहो पर इन कवियो ने अपने काव्यानुभव को सूक्ष्म वैचारिक स्तर पर प्रत्यक्ष करने की मजबूरी अनुभव की है। अनुभूति के वैचारिक सवेद्रण से भाषा म यथेष्ट अमूर्तता आ गयी है। लेकिन इस काव्य प्रक्रिया म (जिसकी मूल प्रकृति सामाजिक है) वस्तुपरक वैचारिक सार तत्व तक पहुँचने की आकाक्षा ही सक्रिय दिखलायी पडती है। ये कविताएँ एक निश्चित सामाजिक समझ तथा समन्वित वचारिक परिप्रेक्ष्य से बुनी हुई है। हर एक कविता के पीछे सार्थक दृष्टि का एक विशिष्ट सदर्भ है। इस केन्द्रीय दृष्टि के मिलते ही सदर्भ की रोशनी म, प्रतीकार्थों के स्तर एक के बाद एक खुलते चले जाते है। (कुमारेन्द्र की प्रक्रिया, सूरज म कितनी किरणें हैं' तथा मनमोहन की 'सूर्योदय' और 'मशाल' आदि कविताएँ)।

अमूर्तता की परतो के नीचे एक समान्तर अर्थ ससार उद्घाटित होता चलता है, जो सच्चाइयो के अपेक्षाकृत ठोस अनुभव की झलक देता है। अमूर्तता की यह स्थिति भाववादी व्यक्तिपरक कविता म मिलने वाली अमूर्तता से अलग और विशिष्ट है। व्यक्तिपरक कविता कल्पना के क्षेत्र से अमूर्तन प्राप्त करती है।

इन कविताओं में कवि सामाजिक तथ्य के क्षेत्र से अमूर्तन प्राप्त करता है। तथ्य के क्षेत्र से पाया हुआ अमूर्तन, भाषा को सामाजिक यथार्थ के स्रोतों से टूटने नहीं देता जबकि कल्पना के क्षेत्र से प्राप्त अमूर्तन में इन दोनों के जुड़े रहने की गुंजाइश कम ही रहती है। फिर भी जनवादी कविता को अमूर्तन की शमशेरी अतिशयता से बचना चाहिए क्योंकि भाषा को एक सीमा के बाहर तोड़ने में सम्प्रेषण के सूत्र टूट जाते हैं—वहां शब्द स्वतन्त्र होकर अपनी अर्थदिशा स्वयं निर्धारित करने लगते हैं। संगीत की सीमा को छूती हुई काव्य भाषा की यह अमूर्तन प्रक्रिया कविता को एक खतरनाक मोड़ पर ले जा सकती है। संगीत की तरह वह गुणी-जनों के आनन्द की चीज हो जाती है। यह पाठक को मात्र संवेदनात्मक सुरसुरी या गणितात्मक आनन्द देकर चुक जाती है। अमूर्तन की इस स्थिति में शब्द अराजक हो उठते हैं। वे कवि के अनुभव और संवेदनागत उद्देश्य को सही और वांछित दिशा में गतिशील न कर, अर्थ की अनेक वैकल्पिक दिशाएं खोलने लगते हैं। जनवादी कवि को इस रूपवादी महत्वाकांक्षा से यथासंभव बचना होगा।

अन्त में एक जरूरी बात। केवल राजनीतिक, आर्थिक संदर्भों को ही अपनी अन्तर्वस्तु के रूप में ग्रहण करने के प्रति आग्रहशील जनवादी कवियों को अपनी अन्तर्वस्तु के चयन क्षेत्र और अनुभव जगत का विस्तार करना होगा, प्रकृति, सौंदर्य और मानवीय प्रेम के विविध रूपों को अपनी कविताओं का विषय बनाना होगा और इनके माध्यम से सामाजिक संघर्ष और राजनीति की बात कहने के नये रचनात्मक अंदाज पाने होंगे। पाब्लो नेरूदा, ब्रेख्त, निराला, नागार्जुन और फैज़ की कविताओं से जनवादी कविता को अधिक कारगर और लोकप्रिय बनाने की सीख लेनी होगी। इसी के साथ साथ अपनी समझ को अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुभव को वस्तुपरक एवं मूर्त बनाने के लिए जनवादी कवियों को जीवन के स्तर पर, बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए संगठित वर्ग की संघर्ष प्रक्रिया एवं उसकी नियति से अधिक सचेत, सक्रिय और घनिष्ठ रूपों में जुड़ना होगा। कलाकार और कार्यकर्ता के बीच की दूरी अब और कम होनी चाहिए। □

कविता मे सप्रेषण की समस्या

नदकिशोर नवल

अ य लोगो की तरह कवि भी समाज म ही रहता है। वह जिस भाषा का प्रयोग करता है वह समाज द्वारा ही निर्मित और विकसित होती है। इस तरह सप्रेषण की समस्या मूलत एक सामाजिक समस्या है। यदि कवि समाज से दूर किसी एकात अरण्य म होता और उसके पास अभिव्यक्ति का ऐसा साधन होता जो समाज के लिए अपरिचित होता तो वह पूरी तरह स असप्रेषणीय होता। कविता म जब कभी सप्रेषण की समस्या उठती है उसम एक समाज आ जाता है वह समाज जिस तक कवि को अपनी बात पहुँचानी है और वह समाज, जो उसकी बात को समझने म समथ हो। कवि का काम इस समाज के बिना नही चल सकता। यह सभव है कि उसका समाज छोटा या खास प्रकार का हो, लेकिन यह सभव नही है कि वह हो ही नही। हिंदी के एक युवा कवि ने कहा है 'अकेला कवि कटघरा होता है।' यह बात सप्रेषण की दृष्टि से उस पर पूणत लागू होती है। यदि कवि कविता की सप्रेषणगत अर्थात सामाजिक समस्या से परे है तो वह समाज स दूर एक छोटे से दायर म कैद है। कविता म एक निरतर सवाद की स्थिति रहती है। उसके एक छोर पर कवि रहता है और दूसरे छोर पर पाठक या श्रोता। वह पाठको तक पहुच कर ही अपनी साथकता प्राप्त करती है। हिंदी म सप्रेषणीयता की दृष्टि से तुलसीदास सवश्रेष्ठ कवि है। उन्होने कविता म सप्रेषण की समस्या को समझा था। उन्होने स्पष्ट शब्दो म कहा है 'मनि मानिक मुकुता छवि जसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी। नप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई। तैसेहि सुकबि कबित बुध कहही। उपजहिं अनत अनत छबि लहही।' उनके विचार स विद्वानो के अनुसार श्रष्ठ कविता वह नही है जो कवि से उत्पन्न होकर कवि तक ही सीमित रह जाये बल्कि वह है जो पाठको तक पहुच और उनक हृदय म स्थान प्राप्त करे। तभी उसका वास्तविक सौदय देखन म आता है। कहन की आवश्यकता नही कि सप्रेषण की यह समस्या सबस अधिक प्रगतिशील कवियो के लिए ही महत्त्व रखती है। य वे कवि है जो अपनी बात अधिक से अधिक लोगो तक पहुचाना चाहत है और उ ह अपनी तर्क-पद्धति पर लाना चाहत है।

आम तौर पर यह समझा जाता है कि सप्रेषण की समस्या केवल भाषा की समस्या है। लकिन बात ऐसी नही है। यह सवथा सभव है कि किसी कवि की भाषा सरल और बोधगम्य हो लकिन उसका कथ्य नितात दुरूह और दुर्बोध हो।

आजकल हिंदी में जिस ढंग की कविताएं लिखी जा रही हैं उन्हें भाषा की दृष्टि से कोई कठिन नहीं कहता। हरिऔध जी के 'प्रियप्रवास' को समझने के लिए शब्दकोश की आवश्यकता पड़ती थी और आज भी पड़ सकती है लेकिन हिंदी के 'आधुनिक' कवियों की कविताओं को समझने के लिए ऐसी ज़हमत मोल नहीं लेनी पड़ती है। ये कवि ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो बहुत कुछ साधारण होती है। आलोचकों ने कहा है कि इन्होंने शब्द कहीं और जाकर नहीं ढूंढे बल्कि आसपास के शब्दों को ही सान पर चढ़ा दिया लेकिन इनकी बात समझ में नहीं आती है। उदाहरण के लिए मैं नीचे एक ऐसे कवि की एक कविता उद्धृत कर रहा हूं जिस पर और सारे आरोप लगाए जा सकते हैं लेकिन भाषागत दुरूहता संबंधी कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता

जहां मुझे होना चाहिए / जब मैं वहां नहीं होता तो तार से लटका कर कुछ जीव हवा में चीखने के लिए बांध दिए जाते हैं / और मैं पेड़ की शाख में दुबक कर प्रतीक्षा करने लगता हूं / हमारे पास कुछ ऐसी कौड़ियां हैं, जिनसे एक भी दांव नहीं जीती जा सकती, / मैं तब शब्द, पहेलियों, शतरंज, ब्रिज और पेट की मोहरों में से होता हुआ भी / वहां नहीं पहुंच पाता, जहां मुझे होना चाहिए था।

(चाकू से खेलते हुए —सौमित्र मोहन)

भाषा सरल होने पर भी यह कविता समझ में क्यों नहीं आती है? इसका कारण यह है कि कवि ने कविता में संप्रेषण की समस्या को केवल भाषा अथवा अभिव्यक्ति की समस्या के रूप में देखा है। संप्रेषण की समस्या केवल अभिव्यक्ति की समस्या नहीं है। इसका गहरा संबंध कवि के अनुभवों से भी होता है। संप्रेषणीयता ही यह तय करती है कि कवि कविता में किस अनुभव को और उसे किस ढंग से अभिव्यक्त करेगा। इस तरह संप्रेषण कवि के अनुभवों को भी प्रभावित करता है। यह उसके अनुभवों को काटता छांटता और उन्हें नयी आकृति में ढालता है। यदि ऐसा न हो तो कविता में अभिव्यक्त अनुभवों के ग्रहण का दायरा या तो बनेगा ही नहीं, या किसी तरह बन गया तो वह बहुत सीमित होगा। इस बात की उलटी स्थिति भी पूरी तरह सही है। कविता में अभिव्यक्त अनुभव यदि सुबोध हो, पर उसकी भाषा दुर्बोध हो तो फिर वही बात हो जाएगी। हिंदी कविता में ऐसी घटना भी घटी है। निराला की कविताओं के भाव प्रायः इतने 'साधारण' हैं कि उनकी कविताएं जब एक बार समझ में आ जाती हैं तब पाठकों की जीवन संगिनी बन जाती हैं पर उनकी भाषा अधिकांश में इतनी दुर्बोध होती है कि हिंदी के विशाल पाठक वर्ग तक इस महान् कवि का नाम जिस हद तक पहुंचा, उस

हद तक उनकी कविताएं रहा। यहाँ मैं सम्प्रेषणीयता के नाम पर कविता में भाषा प्रयोग की जटिलता की अनदेखी नहीं करना चाहता हूँ। मेरा उद्देश्य एक तथ्य की ओर, जिसका अपने पाठकीय जीवन में हम रात दिन अनुभव करते हैं, सकेत मात्र करना है। इस प्रकार कविता में सम्प्रेषण की समस्या दोहरी है एक अनुभव के स्तर पर और दूसरी अभिव्यक्ति के स्तर पर। चूंकि अनुभव और अभिव्यक्ति एक दूसरे से अभिन्न है, इसलिए अभिन्न रूप में ही यह समस्या कवि के सामने आती है। श्रेष्ठ कविता में अनुभवगत सम्प्रेषणीयता और अभिव्यक्तिगत सम्प्रेषणीयता का अलग अलग बोध नहीं होता। उसमें अनुभव और अभिव्यक्ति परस्पर अविच्छिन्न होते हैं और उनमें पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया चलती रहती है। इस क्रिया प्रतिक्रिया या घात प्रतिघात में गुजरने वाला कवि ही सम्प्रेषणीयता से युक्त और प्रभाव की दृष्टि से सजीव कविताएँ लिख पाता है। यदि मुझे एसी किसी कविता का उदाहरण देना पड़े तो मैं नागार्जुन की वह प्रसिद्ध कविता उद्धृत करूंगा जिसमें उन्होंने अकाल के दो चित्र अंकित किये हैं

> कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
> कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उसके पास
> कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
> कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
>
> दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद
> धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
> चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
> कौए ने खुजलायी पाँखें कई दिनों के बाद
>
> [अकाल और उसके बाद]

इस कविता में दो अनुभव हैं एक—एक परिवार पर छाये अकाल के भयावह सन्नाटे का, जिसका जिक्र कवि अलग से अपने शब्दों द्वारा नहीं करता और दूसरा—उस सन्नाटे के टूटने का, जिसमें शोरगुल नहीं होता लेकिन मनुष्य से लेकर पक्षी तक की हरकत शुरू हो जाती है। इन अनुभवों को कवि ने उपयुक्त भाषा से अभिन्न करके चित्रात्मक ढंग से व्यक्त किया है। इस दोहरी सम्प्रेषणीयता से कविता सही अर्थों में सम्प्रेषणीय और उसके फलस्वरूप प्रभावशाली हो गयी है।

आई० ए० रिचर्ड्स ने सम्प्रेषण की समस्या पर विचार करते हुए एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात लिखी है। वह यह कि 'सम्प्रेषण सौंदर्य नहीं है'। इस बात को समझकर सावधान हो जाने की जरूरत है। सम्प्रेषण सौंदर्य नहीं है, इसका मतलब

यह है कि कविता म केवल अपनी बात पाठकों तक पहुचा देने से कविता, कविता नही हो जाती। कविता को कविता बनाने के लिय उस सौंदय के धरातल तक उठना होगा। यदि ऐसा नही हागा तो समाचार पत्रो म छपने वाले विज्ञापन से लेकर आंदोलनात्मक नारे तक 'कविता' माने जायेगे। सम्प्रेषणीयता इन चीजो मे आखिरी हद तक होती है। फिर वह कौनसी चीज़ है जो किसी भी अभिव्यक्ति को सप्रेषणीयता से आगे ले जाकर उसे साहित्यिक रचना का नाम और पद प्रदान करती है? निश्चय ही वह चीज 'सौदय' है। यह सौंदय कविता मे तब आता है जब वह सामान्य अभिव्यक्ति मे अपने को पृथक करके एक 'रूप' प्राप्त कर लेती है। चूकि समाचार पत्रो के विज्ञापन या आदालनात्मक नारे रूपहीन होते ह इसलिए उनमे सौदय नही होता। इसी कारण वे हमे उस तरह प्रभावित नही करते जिस तरह तुलसीदास या नागाजुन की कविता करती है। कविता म सम्प्रेषण का उच्चतम रूप देखने को मिलता है। इसमे केवल विषय वस्तु को पाठकों तक पहुचाया नही जाता, बल्कि उसे एक रूप प्रदान कर, एक कृति का रूप द दिया जाता है। इसी अथ मे कविता नवीन सृजन या पुन सृजन है। कविता म कवि आवश्यकतानुसार स्वतत्र रूपो का ही प्रयोग करता है, लेकिन प्राय रूपा के साचे बनने लगत है जिनमे ढलती हुई आगे आने वाली कविता अपनी सजीवता और प्रभावोत्पादकता खोने लगती है। ऐसी स्थिति मे नये कवि कभी एकरसता दूर करन के लिए और कभी नयो विषयवस्तु के दबाव से, कविता म पुरान रूपों का ध्वस करने लगते है। समकालीन हिंदी कविता म पुराने रूपो का ध्वस बडे व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है। यह आपत्ति की बात नही हो सकती है, बशर्ते कि पुराने रूपो के ध्वसावशेष पर खडी कविता नये रूपा से युक्त हो। हान यह है कि पुराने रूपा को छोडने के क्रम म हिंदी कविता पूणत रूपहीन हो गयी है। यह एक अरूप कविता है फलत यह हमारे सौदयबोध को कही से प्रभावित नही करती। पाठक यह तो महसूस करता है कि उसे कभी कोई चिकोटी काटता है, पर यह नही कि कवि ने उस पर जोरदार हमला करके उसे अपनी तक पद्धति पर लाने का गभीर प्रयास किया है। जाहिर है कि प्रगतिशील कवि का काम केवल पुरान रूपो से विद्रोह करने से नही चल सकता। वह चूकि क्रातिकारी कवि होता है, इसलिए एक रूप को तोडकर वह आवश्यकतानुसार दूसरे नये रूप का निमाण भी करता है। लेकिन उसकी समस्या यही तक नही है, इससे आगे भी है। वह कविता मे नवीन सृजन या पुन सृजन करके न केवल पाठको के सौंदयबोध को प्रभावित करना चाहता है, बल्कि उसके माध्यम मे वह उनको वाछित दिशा म सक्रिय भी करना चाहता है। यदि उसकी कविता म सप्रेषणीयता हुई, सौदय हुआ और यह सक्रिय बनाने की क्षमता नही हुई तो उसकी कविता सच्चे अर्थों मे प्रगतिशील कविता नही होगी। सच्चा सौदय जीवन, उसके उन व्यव

हारो से, जो पूरे ममाज को एक नय साचे म ढालत हैं जलग हान म नही, वल्कि
उनस अधिकाधिक घनिष्ठ होने म है। कविता म जव सक्रियता की चर्चा आती
है तो लोग समझने ह कि केवल सामाजिक और राजनीतिक कविताओ को
महत्त्व दिया जा रहा है। वे कभी प्रम की ओर कभी प्रकृति की कविता को
आगे रखकर कहत हैं, 'भला एसी कविता क माध्यम स कवि पाठक का क्या
सक्रिय करेगा ?' यहा निवेदन है कि प्रेम की कविता तो सक्रिय करती ही है
प्रकृति की कविता भी सक्रिय करती है। जो कवि पुराने मूल्यो के विरुद्ध सघप
करत प्रमी की प्रेम की भावना को कविता म अभिव्यक्त करता है नये मूल्या की
चेतना स अनुप्राणित होकर क्या उसकी कविता पाठको को सक्रिय नहीं बनाती?
इसी तरह प्रकृतिपरक कविताओ की प्रकृति म भी अतर होता है। प्रकृति की
एक कविता हम केवल उसके सौदय के भोग का अवसर प्रदान करती है और
प्रकृति की दूसरी कविता हमारी प्रगतिशीलता की चेतना को उन्नत बनाकर
हम जीवन सघष म और उत्साह क साथ उतारती है। छायावादी कविता
की प्रकृति को मुक्त कहा गया है। इस मुक्तता का क्या अथ है ? यह मुक्तता
हम मुक्त होने की प्रेरणा देती है हम सक्रिय बनाती है ? यहा रवीद्रनाथ की
कविता निर्झरेर स्वप्नभग को याद किया जा सकता है। बात कवि की सपूण
चेतना की है। यदि उसकी चेतना ज्वलित प्रगतिशील चतना हुई ता उसकी
लौ से छूकर प्रेम और प्रकृति ही नही सारी चीज नय सिर स उदभासित हो
उठेंगी।

कविता के प्रसग म जब सप्रेपणीयता का प्रश्न उठाया जाता है तब कभी
कभी यह भी कहा जाता है कि कविता को एक चेतन प्रयास बनाया जा रहा है,
जबकि यह अचेतन प्रयास है। कवि अचेतन रूप म कविता लिखता है और इस
क्रम म यह नही सोचता कि उसकी कविता दूसरे समझ सकेंगे या नही। कविता
वह आत्मानद के लिए लिखता है। यह एक सयोग है कि यदा कदा या बहुधा उसस
दूसरे भी आनद प्राप्त कर लेते है। ऐसा समझने वालो के अनुसार कविता म
सप्रेपणीयता को महत्व देने का मतलब उस चेतन प्रयास क धरातल तक उतार
कर उसे क्षतिग्रस्त करना है। ऐस लोग किसी दूसरे कवि का नही कभी कभी
स्वय तुलसीदास का साक्ष्य सामने रखत और कहते हैं—
भी रघुनाथ-गाथा स्वात सुखाय भाषा ... की थी। ... दास ने
ही महत्व दिया था, पर को नही। ... प्रेपणी ... म को
ध्यान रखने का प्रश्न कहा उठता है ... स ... का
तुलसीदास के लिए स्वात सुखाय थी ... वन
तुलसीदास की उस उक्ति ... नह ...

कहा है, जो 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई।' क्या तुलसीदास के इन दोनों वचनों में कोई विरोध है? ध्यान से देखने पर इनमें कोई विरोध नहीं मालूम पड़ेगा। कविता की रचना प्रक्रिया वस्तुतः एक जटिल प्रक्रिया होती है। उसमें कवि अपने को भी महत्त्व देता है और दूसरे को भी। उसमें वह अचेतन भी रहता है और चेतन भी। वह जिस रूप में रहे, सम्प्रेषणीयता की समस्या उसके लिए महत्त्वपूर्ण होती है। यह सर्वथा सम्भव है कि वह अपनी कविता में सम्प्रेषणीयता के प्रति चेतन न हो, पर इसका यह मतलब नहीं है कि वह उस महत्त्व नहीं देता और उसकी उपेक्षा करता है। यदि ऐसी बात होती तो वह अपनी कविता को सर्वजनसंवेद्य बनाने और उसे पाठकों के उपयुक्त संरचना प्रदान करने का प्रयास क्यों करता? इन बातों का संबंध तो सम्प्रेषणीयता से ही है। कवि सम्प्रेषणीयता के प्रति चेतन रहे या नहीं, यदि वह अच्छा कवि है तो उसकी कविता में यह गुण आकर रहेगा। रिचड्र्स ने तो लिखा है कि कविता में सम्प्रेषणीयता का कार्य अचेतन रूप से ही सम्पन्न होना चाहिए। इस बात से पूर्णतः सहमत होना संभव नहीं है क्योंकि अपनी कविता को अधिक से अधिक सम्प्रेषणीय बनाना चाहनेवाले कवि उसके लिए सचेतन परिश्रम करते हैं। निरन्तर परिश्रम से ही वे इसमें सफल होते हैं। जैसे वे चेतन रूप से अपनी कविता में दृष्टिकोण का समावेश करते हैं, उसी तरह वे एक बड़ी हद तक चेतन रूप से ही उसमें सम्प्रेषणीयता लाते हैं। प्रगतिशील कवि पर तो यह खास तौर से लागू है। गद्य में जिस तरह भारतेंदु और प्रेमचंद ने अपने को चेतन रूप से सम्प्रेषणीय बनाया है उसी तरह कविता में नागार्जुन, त्रिलोचन और केदार ने। नागार्जुन, त्रिलोचन और केदार की कविताएँ, जो अत्यंत सम्प्रेषणीय हैं, वह सम्प्रेषणीयता की तरफ से लापरवाह रहने से संभव नहीं था। लेकिन यहाँ पुनः यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि सम्प्रेषण का कार्य नितांत चेतन कार्य है। यह चेतन कार्य भी है और अचेतन कार्य भी।

पश्चिम के विचारकों ने तो इस मूल प्रश्न पर भी विचार किया है कि कविता में सम्प्रेषण संभव है कि नहीं। इनके अनुसार वह सर्वथा संभव है, यानी कवि के भाव यथावत् पाठकों तक सम्प्रेषित किये जा सकते हैं जैसे एक जग का पैसा दूसरी जेब में डाला जा सकता है। लेकिन ब्रैडले के अनुसार कविता का उदय अनुभव के एक नितांत निजी संसार से होता है इसलिए उसे कभी भी दूसरे तक सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता। तीसरे विचारक, जो और कोई नहीं स्वयं रिचड्र्स हैं, यह तो नहीं मानते कि कवि के भाव का यथावत् सम्प्रेषण संभव है, पर यह मानते हैं कि पाठक के भाव उसके भावों से समानता रख सकते हैं। आधुनिकतावादी कविता के आधार पर सम्प्रेषण संबंधी जो चिंतन किया गया है वह सम्प्रेषण की संभावना को बहुत ही क्षीण कर देता है। लेकिन प्राचीन, मध्ययुगीन और ढेर सारे आधुनिक श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन में रिचड्र्स की बात बहुत कुछ सही प्रतीत

हाती है। उनका गप्रेपण मवधी उक्त विचार भारतीय काव्यशास्त्र व साधारणी करण सिद्धात के भी निकट है। साधारणीकरण की समस्या वस्तुत मप्रेपण की ही समस्या है। जो कवि का है वह पाठक का कैस बन जाता है? उत्तर है साधारणीकरण की प्रक्रिया के द्वारा। इसकी बहुत सुदर व्याख्या आचार्य रामचद्र शुक्ल न इन शब्दो म की है   व्यक्ति तो विशेप ही रहता है पर उसम प्रतिष्ठा एस सामान्य धर्म की रहती है जिसके साक्षात्कार स सब श्रोताओ या पाठको के मन म एक ही भाव का उदय थोडा या बहुत होता है। यहा आकर कविता म सप्रपण की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है। □

प्रभात कुमार त्रिपाठी

युवा कविता एक सार्थक शुरूआत

आक्रोश विद्रोह, क्रांति और यथार्थबोध के खासे रेटारिकल और एकायामी रचना के दौर के बाद, अब युवा कविता, जनवादी रचनात्मकता का वयस्क अनुभव की तरह पाने की कोशिश में, बड़ी होती हुई रचना है। समझ और संवेदना के बीच सेतु गढ़ने की कोशिश में, अब वह 'जनवाद' को, सैद्धांतिक सरल रंगीकता में ही नहीं देखती। दरअसल जनवादी संघर्ष और प्रतिबद्धता के सवालों को, अब युवा रचनाकार वहम के विषय की तरह ही नहीं ले रहे। ये सवाल, उनकी संवेदना में रचे बसे सवाल हैं। उनकी संवेदना ठोस जमीन पर टिकी मानवीय संबंधों के संसार में सांस लेती, एक जरूरी संवेदना है। मानवीय संबंधों के संसार में पस्ती का अनुभव आज भी है, लेकिन इस पस्ती को कविता की मुख्य थीम के रूप में प्रचारित करने वाली बुर्जुआ राजनीति से, युवा कवि अच्छी तरह से परिचित हैं। बुर्जुआ ताकतों द्वारा मनुष्य के संसार को अमानवीयकृत करने की कोशिश की गयी और इसलिए समग्र बुर्जुआ राजनीति को, युवा रचनाकार आज भी पहले दर्जे का शत्रु मानते हैं लेकिन वे पिछले रेटारिकल दौर की गलतियों को महसूस करते हुए जानते हैं कि कविता की भाषा अलग और विशिष्ट है। इस विशिष्टता में कवि के अंतरंग अनुभवों का जीवंत स्पर्श है। वह अनुभव करता है कि अंतत समग्र रचनात्मक भाषा मनुष्य के मन को संस्कार देनेवाली भाषा है। उसे क्रांति के नाम पर दृश्य यथार्थ की सरल रसिक शब्दावली में घटाना, कविता के स्तर पर ही नहीं, बल्कि मनुष्य की हैसियत से भी अपने को छोटा करना है।

आज की कविता समाज के मन को जानने की कोशिश कर रही है। समझदार युवा कवि महसूस करते हैं कि मनुष्य के मन को, और इसलिए समाज के मन को भी, इन या उन 'समस्याओं' में घटाया नहीं जा सकता। अपनी कोशिश में (जैसा कि युवा कवि अक्षय उपाध्याय ने निजी बातचीत के दौरान कहा) लोग चीजों को रचना संसार में वापस लाने की दिशा में बढ़ रहे हैं। मुझे उनकी बात ठीक लगती है। युवा कविता के पास अब अनुभवों का एक विविधरंगी संसार है। विनोद कुमार शुक्ल और ज्ञानेन्द्रपति जैसे एकदम भिन्न कवियों के संसार को लें तो हम पायेंगे कि रचनात्मक धैर्य के साथ वे भाषा और अनुभव के बीच की दीवार को ढहाने की कोशिश में लगे हैं। फिर विजेंद्र जैसे कवि हैं जो अपनी

होती है। उनका सप्रेषण सबधी उक्त विचार भारतीय काव्यशास्त्र के साधारणीकरण सिद्धात के भी निकट है। साधारणीकरण की समस्या वस्तुत सप्रेषण की ही समस्या है। जो कवि का है, वह पाठक का कैसे बन जाता है? उत्तर है साधारणीकरण की प्रक्रिया के द्वारा। इसकी बहुत सुदर व्याख्या आचार्य रामचद्र शुक्ल ने इन शब्दों म की है 'व्यक्ति तो विशेष ही रहता है पर उसम प्रतिष्ठा ऐस सामान्य धर्म की रहती है जिसके साक्षात्कार स सब श्रोताओ या पाठकों के मन म एक ही भाव का उदय थोडा या बहुत होता है।' यहाँ आकर कविता म सप्रेषण की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है। □

प्रभात कुमार त्रिपाठी

युवा कविता एक सार्थक शुरूआत

आक्रोश विद्रोह, क्रांति और यथार्थबोध के नाम रेटारिक्ल और एकायामी रचना के दौर के बाद, अब युवा कविता, जनवादी रचनात्मकता को वयस्क अनुभव की तरह पाने की कोशिश म, बडी होती हुई रचना है। समझ और संवेदना के बीच सतु गढन की कोशिश म, अब वह जनवाद' को, सैद्धांतिक सरल रैंगिकता म ही नहीं देखती। दरअसल जनवादी सघष और प्रतिबद्धता के सवालो को, अब युवा रचनाकार बहस के विषय की तरह ही नहीं ले रहे। ये सवाल, उनकी सवेदना म रचे बसे सवाल है। उनकी सवेदना ठोस ज़मीन पर टिकी, मानवीय सबधो के ससार म सास लेती, एक जरूरी सवेदना है। मानवीय सबधो के गमार मे पस्ती का अनुभव आज भी है, लेकिन इस पस्ती को कविता की मुख्य थीम के रूप म प्रचारित करने वाली बुजुआ राजनीति से, युवा कवि अच्छी तरह से परिचित ह। बुजुआ ताकता द्वारा मनुष्य के ससार को अमानवीयकृत करने की कोशिश की गयी और इसलिए समग्र बुजुआ राजनीति को, युवा रचनाकार आज भी पहले दर्जे का शत्रु मानत है लेकिन वे पिछल रेटारिक्ल दौर की गलतिया का महसूस करते हुए जानत है कि कविता की भाषा अलग और विशिष्ट है। इस विशिष्टता मे कवि के अतरग अनुभवो का जीवत स्पश ह। वह अनुभव करता है कि अतत समग्र रचनात्मक भाषा मनुष्य के मन को सस्कार देनेवाली भाषा है। उसे क्रांति के नाम पर, दृश्य यथाथ की सरल रैंगिक शब्दावली मे घटाना, कविता के स्तर पर ही नहीं, बल्कि मनुष्य की हैसियत स भी अपने को छोटा करना है।

आज की कविता समाज के मन को जानने की कोशिश कर रही है। समझदार युवा कवि महसूस करत ह कि मनुष्य के मन को, और इसलिए समाज के मन को भी इस या उस 'समस्याओ' मे घटाया नहीं जा सकता। अपनी कोशिश म (जसा कि युवा कवि अक्षय उपाध्याय न निजी बातचीत के दौरान कहा) लोग चीज़ो को रचना ससार मे वापस लाने की दिशा म बढ रहे ह। मुझे उनकी बात ठीक लगती है। युवा कविता के पास अब अनुभवो का एक विविधरगी ससार है। विनोद कुमार शुक्ल और ज्ञानेंद्रपति जैसे एकदम भिन्न कवियो के ससार को न तो हम पायगे कि रचनात्मक धैय के साथ वे भाषा और अनुभव के बीच की दीवार को ढहाने की कोशिश म लगे ह। फिर विजेंद्र जसे कवि है, जो अपनी

होती है। उनका सप्रेषण सबधी उक्त विचार भारतीय काव्यशास्त्र क साधारणी-
करण सिद्धात के भी निकट है। साधारणीकरण की समस्या वस्तुत सप्रेषण की
ही समस्या है। जो कवि का है, वह पाठक का कैसे बन जाता है? उत्तर है साधा-
रणीकरण की प्रक्रिया के द्वारा। इसकी बहुत सुदर व्याख्या आचाय रामचद्र
शुक्ल ने इन शब्दो म की है   व्यक्ति तो विशेष ही रहता है पर उसम प्रतिष्ठा
ऐसे सामान्य धम की रहती है जिसके साक्षात्कार स सब श्रोताओ या पाठको क
मन म एक ही भाव का उदय थोडा या बहुत होता है।' यहाँ आकर कविता म
सप्रेषण की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है।□

कविता म अपने अनुभव करने और सोचने की समग्र जटिल प्रक्रिया को मूर्त करने की कोशिश म लगे है। उदाहरणो के विस्तार म जाना यहा मुमकिन नही है लेकिन मुझे लगता है कि अबकी बार 'वस्तुपरकता' का दृष्टिकोण भर नही है बल्कि बुनियादी सवेगो से जीवित एक आत्मीय ससार है, जहा आत्मपरकता और वस्तुपरकता के द्वन्द्व की बहस म उलझे बिना, आप सवेदित होते है। सभवत यही वयस्क होने की प्रक्रिया का प्रमाण है।

जो बात मुझे व्यक्तिगत रूप से बेहद महत्त्वपूर्ण लगती है, वह है कविता म प्रेम की वापसी। (मसलन 'अर्थात' म प्रकाशित विजय की प्रेम कविताएँ ही लें—ये कवि मन की अतरग दुनिया की कविताएँ हैं, लेकिन बराबर अपने से बड़े एक ससार के दबावो का एहसास लिये)। प्रेम इन कवियो के लिए न तो एक घरेलू अनुभव है और न ही मध्यवर्गीय यौनातुरता का प्रतीक एक शारीरिक अनुभव। यह आकस्मिक ही नही है कि प्रेम कविताओ की भाषा म, एक मानवेतर प्रकृति को आत्मसात करने की कोशिश है। अतरगता और समय के प्रति प्रतिबद्धता के बीच कोई दरार इन कवियो के यहा नही है। उन्हे अपनी परपरा की भाषा के रोमानी अनुगूजो से एलर्जी नही है। सभवत यही कारण है कि प्रमोद वर्मा ने इस नये दौर को रोमान की वापसी का दौर कहा है। दरअसल रोमान की धारणा का और उससे जुड़ी खालिस हिंदुस्तानी शब्दावली के पुनर्वास का यह प्रयत्न जरूरी तौर पर एक जनवादी प्रयत्न है—लेकिन उसम भी पहल यह मन और सस्कार के स्तर पर 'कविता को बचाये रखने के लिए जरूरी है। क्या किसी कवि के लिए यह मुमकिन है कि कविता की शर्त पर वह जनवाद का बिगुल बजाये? राजनीतिक जोश के चलते यथार्थवादी प्रगतिशील और आधुनिक बनने के चक्कर म हमने अपनी कविता को भाषा की उस पूरी परम्परा से ही काट लिया था जिसम प्रकृति की रचनात्मक दुनिया थी। प्रकृति को गुह्य आध्यात्मिक प्रतीको म या जनवादी सद्धातिकता म घटा देने की प्रक्रिया के विपरीत ये कविताएँ प्रकृति से प्रेम करने की, उसे ह्यूमनाइज करने की कोशिश है और यह भी सिर्फ आलकारिक अर्थ म नही।

ये प्रेम कविताए इस दौर की मार्मिक उपलब्धि है। प्रेम असल म, कविता से प्रेम करने के अनुभव से जुड़ा है। इधर के कवि कवि कर्म को लेकर जरा भी कुंठित नही हैं। मैं समझता हूँ कि कविता को एक जरूरी कर्म की तरह लेने की कोशिश के पीछे कोई सैद्धातिक या दलीय आग्रह मात्र नही है बल्कि एक एहसास है कि कविता इनके लिए व्यक्तिगत स्तर पर एक जरूरी चीज है और समाज के स्तर पर भी। कविता से प्रेम आज के जनवादी कवि की बुनियादी जरूरत है। यह कविता से प्रेम का ही नतीजा है कि कवियों के ससार म आज बच्चे हैं

कविता मे अपने अनुभव करन और गाचन की समग्र जटिल प्रनिया को मूत करने की कोशिश म लग है। उदाहरणा क विस्तार म जाना यहा मुमकिन नहा है लकिन मुझ लगता है कि अवकी वार 'वस्तुपरकता' का दप्टिकाण भर नही है वल्कि वुनियादी सवेगा से जीवित एक आत्मीय ससार है, जहा आत्मपरकता और वस्तुपरकता के द्वत की वहस म उलझ विना, आप गवदित हात ह। सभवत यही वयस्क होने की प्रक्रिया का प्रमाण है।

जो वात मुझ व्यक्तिगत रूप स वेहद महत्त्वपूण लगती ह वह है कविता म प्रम की वापसी। (मसलन 'अर्थात' म प्रकाशित विजद्र की प्रम कविताएँ ही ल—य कवि मन की अतरग दुनिया का कविताएँ हैं, लकिन वरावर अपने स वड एक ससार के दवावा का एहसास लिय)। प्रम इन कविया क लिए न तो एक घरनू अनुभव है और न ही मध्यवर्गीय यौनातुरता का प्रतीक एक शारीरिक अनुभव। यह आकस्मिक ही नही है कि प्रम कविताओ की भापा म एक मानवेतर प्रकृति को आत्मसात करने की कोशिश है। अतरगता और समय के प्रति प्रतिवद्धता के वीच कोई दरार इन कविया के यहा नही है। उन्ह अपनी परपरा की भापा के रोमानी अनुगूजो स एलर्जी नही है। सभवत यही कारण ह कि प्रमोद वर्मा न इस नये दौर को रोमान की वापसी का दौर कहा है। दरअसल रोमान की धारणा का और उसस जुडी खालिस हिंदुस्तानी शब्दावली क पुनर्वास का यह प्रयत्न जरूरी तौर पर एक जनवादी प्रयत्न है—लेकिन उसस भी पहल यह मन और सस्कार के स्तर पर कविता' को वचाये रखन क लिए जरूरी है। क्या किसी कवि के लिए यह मुमकिन है कि कविता की शत पर वह जनवाद का विगुल वजाय? राजनीतिक जोश के चलत यथाथवादी प्रगतिशील और आधुनिक वनने के चक्कर म हमने अपनी कविता को भापा की उस पूरी परम्परा स ही काट लिया था जिसम प्रकृति की रचनात्मक दुनिया थी। प्रकृति का गुह्य आध्यात्मिक प्रतीका म या जनवादी सैद्धातिकता म घटा दने की प्रनिया क विपरीत ये कविताएँ प्रकृति स प्रम करने की उस ह्यूमनाइज करने की कोशिश है, और यह भी सिफ आलकारिक अथ म नही।

ये प्रेम कविताएँ इस दौर की मार्मिक उपलब्धि है। प्रम असल म, कविता से प्रेम करने क अनुभव से जुडा है। इधर के कवि कवि कम को लेकर जरा भी कुटित नही है। मैं समझता हूँ कि कविता को एक जरूरी कम की तरह लेने की काशिश के पीछे कोई सद्धातिक या दलीय आग्रह मात्र नही है वल्कि एक फशन है कि कविता इनके लिए व्यक्तिगत स्तर पर एक जरूरी चीज है और समाज क स्तर पर भी। कविता से प्रम आज के जनवादी कवि की वुनियादी जरूरत है। यह कविता मे प्रम का ही नतीजा है कि कवियो क ससार म आज वच्चे हैं

समकालीन कविता में कुछ जनविरोधी स्वर

यद्यपि हिन्दी में 'नयी कविता' की औपचारिक स्थापना आज़ादी के बाद के वर्षों में हुई, लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि नयी कविता के मुख्य चारित्रिक तत्व आज़ादी से पूर्व के वर्षों में विद्यमान नहीं थे। असल में, नयी कविता संबंधी प्रवृत्तियों का प्रस्थान बिंदु द्वितीय महायुद्ध का काल है जब सर्वहारा और पूंजीवादी शक्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सीधे संघर्ष में उलझी हुई थीं और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद को एक बार फिर तीखा अहसास हुआ था कि उसके द्वारा पोषित राजनीति, विचारधारा और संस्कृति अधिक समय तक सर्वहारा शक्तियों के सामने नहीं टिक सकती।

इस व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी कविता को रखें तो पायेंगे कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में लिखी जाने वाली सामान्य जनता की आकांक्षाओं की वाहक प्रगतिशील कविता को सीधे सीधे चुनौती देकर पराजित करना उस बुर्ज़ुआ राजनीति और संस्कृति के लिए आसान नहीं था जो एक लंबे समय तक राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करती आ रही थी। हमारी जनोन्मुखी कविता का विरोध करके बुर्ज़ुआ संस्कृति यह जोखिम नहीं उठा सकती थी कि साहित्य के स्तर पर व्यापक सामाजिक आक्रोश सचेत होकर धीरे धीरे पूंजीवाद विरोध में परिणत हो जाय तथा पाठक समुदाय की मानसिकता वर्ग चेतना से लैस होने की प्रक्रिया में प्रविष्ट कर जाय। इसलिए बुर्ज़ुआ हितों से जाने अनजाने जुड़े हुए कवि प्रगतिशीलता का सीधा विरोध न करके कुछ ऐसे मूल्यों पर धीरे धीरे बल देने लगे थे जिनकी परिकल्पना साहित्य के नये नये प्रयोगों, रूपों तथा व्यक्ति के निजी संदर्भों के इर्द गिर्द की गयी थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ साथ विभिन्न देशों और समाजों के वर्ग यथार्थ की प्रकृति में तीव्रता से परिवर्तन हुआ जिसका सीधा प्रभाव हमारे समाज पर भी पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति इसी व्यापक वर्ग-यथार्थ के आवश्यक परिवर्तन का विशिष्ट प्रतिफलन थी, जिसमें व्यापक जनांदोलन के उभार का भय हुए और उसकी शक्ति से बाध्य होकर विश्व पूंजीवाद को यह निर्णय लेना पड़ा कि यहाँ के स्थानीय पूंजीपति वर्ग को राजनीतिक सत्ता सौंपी जाय और इसके

साथ साथ सामान्य जनता को जनतात्रिक अधिकार दिये जाये। तभी पूजीवादी उत्पादन वितरण पर आधारित [illegible] राष्ट्रीय सामाजिक विकास की योजना भी बनायी गयी ताकि श्रमिक वर्गों पर नये सिरे से पूजीवादी शोपण थोपा जाये और इस परिप्रेक्ष्य के अतगत यथासभव निर्माण और विकास काय चलाया जाये। कहना न होगा कि आर्थिक विकास के साथ साथ नये सास्कृतिक विकास की योजना भी उभर कर आयी जिसका सार था देश के विशाल मध्यवग म ऐसे 'जनतात्रिक' मूल्यो का विकास करना जो मूलत समाजवाद विरोधी हो।

चूकि हमारा राष्टीय आदोलन अपने समग्र रूप मे बुजुआ राजनीति और चितन से परिचालित था और उसमे देश के विशाल मध्यवग की अत्यत महत्व-पूण भूमिका भी रही थी इसलिए स्वतत्रता के बाद ऐसा चितन हमारे शासक वग के लिए बहुत उपयुक्त होता जो बुजुआ प्रगतिशीलता के व्यापक फ्रेमवक के अतगत नये विभ्रमो मे फसे मध्यवग के बीच क्रियाशील होकर समाजवादी विचारधारा पर निरतर तीव्र प्रहार करता और इस तरह मध्यवर्ग को सवहारा से अलग तथा धीरे धीरे उसके विरोध मे खडा करने की कोशिश करता। इसके लिए यह भी आवश्यक था कि मध्यवग की प्रकृति के अनुकूल व्यक्तिवादी मूल्यो पर बल दिया जाये और इस विभ्रम की सृष्टि की जाये कि शक्षिक तथा सास्कृतिक रूप से अपेक्षतया अधिक विकसित होने के कारण मध्यवग की स्थिति निम्न तबको से श्रेष्ठ और विशिष्ट है।

शक्ति के सामाजिक केंद्रो पर लगभग पूर्ण नियत्रण कायम कर लेने के कारण हमारा शासक वग इस स्थिति म भी था कि इस कुल राजनीति के कार्यान्वयन के दौरान कुछ छोटे बडे समझौते भी कर सकता और बडे तथा व्यापक वग हितो को दृष्टि मे रखकर तथा अपने बुजुआ राजनीतिक चरित्र का विकास करने के लिए मध्यवग को कतिपय छूटें भी दे सके। नयी कविता ने इस समग्र वैचारिक रणनीति का सास्कृतिक रूप ग्रहण किया और अपने मूल म समाजवाद विरोधी होकर भी पूरे मध्यवग की विशिष्ट सास्कृतिक आकाक्षाओ और विभ्रमो का सफलतापूवक वहन किया।

की गयी यह सकारात्मक व्याख्या और भी महत्वपूर्ण हो सकती थी तथा इस तरह शासक वर्ग की सीमित प्रगतिशीलता का उपयोग करके उसकी सूक्ष्म वैचारिक रणनीति को मात दे सकती थी यदि हमारी सर्वहारा शक्तियों के समर्थक लेखकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन तथा नयी शासकीय नीति के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाया होता। लेकिन इन लेखकों द्वारा अपनाये जाने वाले सामान्यतया नकारवादी अथवा अतिशय उदारतावादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप नयी कविता का मूल समाजवाद विरोधी उद्देश्य धीरे धीरे सफल होने लगा। मुक्तिबोध तथा कुछ दूसरे प्रगतिशील कवि नयी कविता आन्दोलन में अलग पड़ने लगे और शीतयुद्धीय साहित्य दृष्टि तथा मूल्य व्यवस्था का धीरे धीरे बोलबाला होने लगा। आज़ादी के बाद के १० १५ वर्षों में कविता व्यापक सामाजिक प्रश्नों तथा समस्याओं से कटकर अपने संकुचित व्यक्तिवादी संसार में बंद हो गयी और ऐतिहासिक संदर्भ से दूर होकर एक अमूर्त गैर ऐतिहासिक तथा समाजातीत मानववाद की वायवी परिकल्पना को प्रचारित करने लगी—यह दूसरी बात है कि प्रारंभ में इस परिकल्पना का प्रचार किसी सुनियोजित तर्क-पद्धति के सहारे न होकर अहम्मन्यतावादी शब्दावली और चमत्कारिक नारों की सहायता से हुआ।

सन साठ तक आते आते शीतयुद्धीय विचार परम्परा कमज़ोर पड़ने लगी और धीरे धीरे हिंदी में नयी कविता का विरोध होना प्रारंभ हुआ। जिस प्रकार सन साठ के आसपास का सामाजिक संकट बुर्जुआ उत्पादन प्रणाली के अंतर्विरोधों को व्यक्त करता था, कुछ कुछ उसी तरह नयी कविता के विरुद्ध उभरने वाले स्वरों को शीतयुद्धीय विचार नीति के अन्तर्गत पनपने वाले व्यक्तिवादी दर्शन के अंतर्विरोधों की अनिवार्य अभिव्यक्ति मानना होगा। नयी कविता का यह विरोध अपनी प्रकृति में विवेकहीन तथा अराजकतापूर्ण था और इसकी भूमिका पिछले मिथ्याभ्रान्तता के मूल्यों को विध्वंसात्मक तरीके से तोड़ने के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकती थी। इस विध्वंसात्मक स्वर ने न केवल बुर्जुआ खेमे के अनेक नये तथा कम नये कवियों को अपनी ओर खींचा, अपितु उन दूसरे कवियों को भी खींचा जो अपने अनुभवों में अन्तर्निहित प्रवृत्तियों के दबाव से धीरे धीरे वाम कविता की ओर आये। यानी मध्यवर्गीय भावबोध के अनेक नये कवियों के साथ साथ कुछ स्थापित कवियों ने भी अपने पुराने कवि रूप को किंचित बदलते हुए गतिशीलता और प्रयोगधर्मिता के बहाने विरोध के इस नये वातावरण में शामिल होने का निर्णय लिया। इन नये पुराने बुर्जुआ कवियों में लक्ष्मीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, विजयदेवनारायण साही, कुंवर नारायण सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश चतुर्वेदी आदि का नाम लिया जा सकता है। दिलचस्प बात यह है कि इनमें से अधिकतर कवि या तो नयी कविता से सीधे सीधे जुड़े

हुए थ या उसी भाववाद की पैदाइश थे, और साथ ही यह भी कि नयी कविता के मुख्य स्वर का विरोध करने के बावजूद लगभग इन सभी के सिर पर नयी कविता के प्रवतक अज्ञेय का वरदहस्त निरंतर बना रहा।

हिंदी कविता का यह नया चरण चाहे नया कविता के विरोधस्वरूप सामने आया हो लेकिन असल म यह नयी कविता के मूल म स्थित वग अनुभव तथा वग दृष्टि का ही दूसरा सास्कृतिक रूप था। इस बात को आज स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है क्योंकि इस कविता से सबध रखने वाले उपरोक्त लेखकों म से कुछ न म जनतांत्रिक विचारधारा के साथ तथा सामान्य जनता के अनुभवों के साथ जुडे होने का किंचित आभास देते ह। ये जनतांत्रिक कवि स्वर, यद्यपि एक अमूर्त तथा गैर-ऐतिहासिक रूप म, सामाजिक समस्याओं को लेकर कुछ तीव्र प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त करते है। कभी कभी ये ऐसा भी सोचते या अनुभव करते पाये जा सकते हैं कि वतमान समाज अपने समग्र रूप म त्याज्य या अस्वीकाय है क्योंकि यहाँ सब कुछ नकली और झूठा है। लेकिन इनकी पूरी रचनादृष्टि अपनी प्रतिक्रियाओं म सतही तौर पर ही सक्रिय होती है और इन कवियो का बौद्धिक स्तर सामान्य बोध (कामन सेंस) से ऊपर उठने मे प्राय असमथ रहता है। रघुवीर सहाय श्रीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना सरीखे कवियों का यह समूह (जो ऊपरी तौर पर अलग अलग राजनीतिक दलों/मतों आदि से जुडे हो सकते हैं) अपने आक्रोश म अपनी अस्वीकृति काव्यगत आलोचना, कटुता, निराशा, असफलता आदि मे न केवल मध्यवर्गीय व्यक्तिवादिता और ईर्ष्या द्वेष की सीमाओं मे बाहर नही निकल पाता, बल्कि अपनी बौद्धिक अक्षमता और सतही सृजनात्मकता के कारण केवल नकारवादी और अराजक या फिर सकुचित तथा अहकारपूण बना रहता है।

साथ ही, इनकी कविताओं पर नजर डाले तो पायेंगे कि उनम समाज सबधी प्रश्नो के सदभ म उचित तथा अनुचित, न्यायपूण तथा अन्यायपूण, महत्त्वपूण तथा सामान्य इतिहास समथक तथा इतिहास विरोधी तत्वो के बीच पहचान करने की सामथ्य नहीं ह। एक खास तरह की बिखराहट तथा चयनवादिता इनकी रचनाधर्मिता की चारित्रिक विशेषता होती है और पूरा का पूरा समाज ही उन्ह किसी न किसी रूप म घृणित या त्याज्य नजर आता है, जिस पर कभी वे व्यंग्यात्मक चोट कर सकते है या जिसे हास्यास्पद समझ कर आत्मतुष्टि पा सकते हैं। इनके भाववाद के विवेचन म यह प्रश्न काफी सहायक हो सकता है कि ये लोग अपनी रचना प्रकृति और व्यापक वर्गीय सहानुभूति के सदभ मे सास्कृतिक रूप से पिछडे तथा राजनीति मे प्रतिक्रियावादी किसान समुदाय अथवा बुजुआ व्यक्तिवादिता और अहम्मन्यता से ग्रस्त शहरी मध्यवग के कितने निकट है, जो (तब के)

पूँजीवादी सांस्कृतिक प्रभावों के आधीन अपनी सही सामाजिक भूमिका से कट जाते है। आज की कविता के संदर्भ में यदि सही जनवादी कविता की रचना में प्रवृत्त होना है तो इस वर्ग के कवियों की समूची प्रकृति और उसके वास्तविक इतिहास विरोधी चरित्र को ठीक तरह समझना आवश्यक है।

अपनी रचनाधर्मिता और संवेदना में जहाँ यह कविता लेखन मध्यवर्ग के सीमित एवं कटु अनुभवों की उपज है वहाँ इसके वैचारिक आयाम का पक्ष एक और भी बड़े खतरे से जुड़ा हुआ है। यह लेखन नयी कविता की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्टतया समाजवाद विरोधी है और समाजवादी विचारधारा को आयातित विचारधारा मानकर अस्वीकृत करता है। इसकी नजर में समाजवादी दृष्टि से परिचालित लेखन सपाट और नकली होता है और उसमें अपने देश की समस्याओं का 'वास्तविक' चित्रण न होकर 'फार्मूलाबद्ध यांत्रिक चित्रण' होता है। उपरोक्त कवियों की गद्य टिप्पणियों को ध्यान से पढ़ा जाये या उनके वक्तव्यों को सुना जाये तो उनमें प्रायः भारतीयतावाद या अंधराष्ट्रवाद का स्वर प्रमुख होता है। देश के यथार्थ की विशिष्टता को ये लेखक अद्वितीय और अनोखा मान कर उसे एक ज्ञानातीत तत्व के रूप में व्याख्यायित करते है और यहाँ के समाज के विभिन्न समाजों, जातियों, धर्मों, अंचलों आदि के विभाजन के विषय में इस तरह बात करते हैं मानो वर्ग विभाजन की परिकल्पना हमारे संदर्भ में न केवल बनावटी और गलत है बल्कि अनुचित और खतरनाक भी है। इस तरह से लेखक अपने वक्तव्यों में अकस्मात अपना राजनीतिक आशय स्पष्ट कर देते हैं—यह दूसरी बात है कि सामान्यतः वे लेखन में 'राजनीति' की प्रायः आलोचना किया करते हैं। (ऐसा कहते या सोचते समय उन्हें यह अहसास भी नहीं होता कि उनका पूरा विचारदर्शन पश्चिमी पूँजीवादी देशों में पनपने वाले तथा अपनी अपनी राष्ट्रीयता या सामाजिकता के अद्वितीय और 'अनुपम' चरित्र से बंधी फासीवादी राजनीति और विचारधारा की देन है और समाजवादी विचारधारा से अधिक अप्रासंगिक' तथा 'अभारतीय' है।) तभी सार्थक व्यवहार के तौर पर ये अपने पाठकों में केवल 'हुसन' की अपेक्षा करते हैं, उन्हें विकसित मानव समाज के शोषित संघर्षधर्मी तबकों की समस्याओं तथा पीड़ाओं के बारे में न बता कर जंगल के दर्द ' की बात करते हैं या फिर मुनादी' के उद्देश्य से किसी लोकवादी व्यक्ति के प्रचार में निकल पड़ने का आक्रामक पैंतरा अख्तियार करते हैं।

इस प्रकार 'जनतांत्रिक भूमिका से बंधी यह कविता अपने सृजनात्मक आयाम में सीमित, संकुचित व्यक्तिवादी और वैचारिक आयाम में लोकवादी राजनीति के रूप में उभरती है। समकालीन हिंदी कविता को समझने तथा काव्यरचना में प्रवृत्त होने से पहले व्यापक पूँजीवादी हितों से बंधे इन काव्यस्वरों को पहचानना हमारे व्यवहार तथा लेखन को कई प्रभावित खतरों से बचा सकता है। ☐

कविता की विचारधारा विचारधारा की कविता

एक कवि ने लिखा है—'कविता का सिलसिला मेरे लिये किसी बच्चे के राक्षस से मुक्त होने का सिलसिला है।' जब मैं इस प्रतीक से उलझने लगा तो प्रभाव की प्राथमिक इकाई टूटने लगी। राक्षस से बच्चे की मुक्ति का संघर्ष सीधी लड़ाई का बिम्ब बनाता है। समझ में आता है कि उसकी हत्या गोली मारकर या शारीरिक पछाड़ से की जायेगी। अर्थ की इस सपाटता का मेल मिलाप कविता की रचना प्रक्रिया से कैसे होगा? बच्चा यानी जनता, राक्षस यानी व्यवस्था, कविता यानी मुक्ति का मीडिया। आशंकायें उठती है कि क्या जनता बच्चे की तरह कोमल, अपरिपक्व, उद्देश्यहीन अथवा शक्तिहीन है? राक्षस क्या खूंखार, डरावना और आक्रामक है, जैसा कि इस शब्द में निहित प्रतिबिम्ब है। राक्षस से युद्ध के लिये औज़ार बनने की क्षमता अकेले कविता में है या किन्ही और शक्तियों से उसकी साझेदारी में है? जाहिर है कि गुलामी की बाह्य वास्तविकताओं के सतत एतिहासिक दबावों के कारण जनता की यह पीढ़ी बुनियादी आवश्यकताओं से पीड़ित होने के बावजूद पीडक कारकों के प्रति अबोध है। यह पीढ़ी अर्थात् भारत की समकालिक जनता। यद्यपि दूसरे देशों की समुन्नत जनता के वैकल्पिक साहस के प्रमाण उसकी चेतना के द्वार पर दस्तक देते है, जिससे धीरे धीरे यहां भी उसकी समझ का इजाफा होता है, पर इजाफे का अनुपात अभी हाशिये में है। जनता में संकट झेलने की अटूट शक्ति है जिसके चलते वह ईति-भीति सह लेती है। प्रकृति तथा शोषकों के मारक दबाव सहने में वह जिस शक्ति का परिचय देती है, वह बच्चों की नहीं है। हां प्रतिशोध के मामले में उसकी शिशुता रेखांकित की जा सकती है। इस जनता के प्रति व्यवस्था का घेरा तथा मालिकों की चौहद्दी काफी मजबूत है। चौहद्दी की पहरेदारी मधुर लुभावने और शीत तरीकों से की जाती है। पिछले दिनों तानाशाही का सीधा हमला पश्चिम में विफल हुआ तो अव-शिष्ट तानाशाही ने अपना रंग बदल लिया। वह प्रजातन्त्र के खोल में स्वायत्तता आजादी, मानव अधिकार, सांस्कृतिक युक्ति आदि मुहावरों के द्वारा तथाकथित ममतालु वेश में व्याप्त हो गई। यह वेशपरिवर्तन आकर्षक चमक के साथ हुआ है। स्वतन्त्रता, समानता के रूप में आगत इस संस्कृति का असली चरित्र पश्चिमी देशों की हरकतों से मूर्त होता है। वह भारतीय जनता, जो प्रतिशोध के मामले में शिशु है तथा जिसका भक्षक राक्षस, साधुवेश में घूम रहा है, उसकी मुक्ति का रास्ता

आसान नहीं है। मुक्ति के रास्ते की खोज जटिल है, तो प्राथमिक कार्य जटिलता की पहचान है। पहचान के लिये सतही राजनीतिक मुहावरों से काम नहीं चल सकता। इस हेतु वह विवेक प्रक्रिया चाहिए जो गहरे से गहरे और परत दर परत धसी राक्षस की पैंतरेबाजी जान सके।

वही कवि मित्र ठीक आगे लिखते हैं कि 'यह एक द्वन्द्वात्मक सत्य है कि जो भाषा बदलाव ला सकती है वह छल भी सकती है और विश्वासघात भी कर सकती है।' इसलिये समस्या मात्र राक्षस की साजिश पहचानने की नहीं, उस मीडिया की खोज भी है जिससे पहचान अभिव्यक्त की जा सके। कविता का मीडिया दूसरी विधाओं की तुलना में ज्यादा गहरा, टिकाऊ, कालजयी और कहीं-कहीं सार्थक होकर भी अमूर्त हो जाता है। सार्थक और उद्देश्ययुक्त भाषा यदि कहीं अमूर्त विधा रचती है तो वह अमूर्तता विस्तार और गंभीरता को समेटने के कारण है। भाष्य में उसकी अमूर्तता समाप्त हो जाती है। खतरे की इस दुरंगी दुनिया में असली कर्म उस भाषा की खोज है जो कवि के कथ्य से तो जुड़ी हो, सबोध्य से भी उसी अर्थ में जुड़ सके। कवि और जनता का यह जोड़ दुतरफा होगा। पहला जोड़ जनता से कवि की ओर—दूसरा जोड़ कवि से जनता की ओर। कवि जनता की आवश्यकताओं से जुड़कर सहभोक्ता बनेगा।

सहभोक्ता एक द्वंद्वात्मक क्रिया है—कवि के अहं तथा जनता की हैसियत के बीच। जनता की हैसियत खोजते समय हैसियत के सचारी औजारों की खोटी नीयत को भापना होगा। अनुभव से गुजरती बाह्य इकाइयां प्रकट रूप से उनमें अधिक सहायक नहीं होंगी। तब कौन सहायक होगा—इतिहास की वह धारा जिसने औज़ारों को ये शक्लें दी हैं। पुस्तकों का भाववाची जनवाची इतिहास रचनाकार की स्मृति के रूप में उपस्थित होकर समकालिकता से जूझता है। चेतना में इतिहास और वर्तमान वर्तमान और वर्तमान विचार और विचार का द्वन्द्व जायज अनुभव प्रक्रिया को जन्म देता है। जायज अनुभव के लिये खुली आंख और खुली ज़मीन की पुस्तक का टकराव भी होता है। टकराव के कारण टूटते फूटते स्फुलिंगों से आत्मसंघर्ष शुरू होता है। जायज़ अनुभवों की रचना आत्मसंघर्ष के बिना नहीं होती दोनों का अंत सबंध लगातार जारी रहने में है। रचनाकार सतत आत्मसंघर्ष के दौरान देखता है कि उसका 'मैं' कहीं खो गया है। खो जाने में भी सुख का अनुभव होता है। वास्तव में यह खो जाना—भागना या पलायन नहीं। यह दो हस्तियों का आपस में शामिल होना है। द्वैत की समाप्ति का पहला चरण। अखण्ड की ओर प्रस्थान। दुनिया को देखने की खिड़की का खुल जाना। चाहे बाहर देखें या भीतर—पारदर्शी स्थिति का प्रवेश। गहरे झांकने में, लगता है कि

वाह्य जगत का सत्य उसके 'मैं' म सिमट गया है। उसका 'मैं' बढ गया है। 'मैं' और बाह्य रचना का घोल उसे ऐसे सपने देता है जैसे सगुण और निगुण का भेद मिट गया हो। यही रचनाकार का सजग रचाव है। रचाव मे बहुत से वे तत्व जो उसकी सजगता के पूत्र आ गये ह, यहा आलोचित होत ह। यही अपनी आलोचना की शुरुआत भी है। रचनाकार पाता है कि जैसे उसका अ तजगत विशाल जगत के अश के रूप म रूपान्तरित है। रचाव का आवयविक सगठन उसे पहली बार प्रतीत होता है।

आज के रचनाकार को एक सुविधा है कि उसे वस्तु जगत की पहचान के बहुत से जायज स्रोत उपलब्ध हैं। ये वे स्रात है, जिनकी चाह उसे है। खुली पुस्तक के अध्ययन तथा 'मैं' के निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया म उसे ज्ञान के जिन उपागों की जरूरत महसूस होती है—इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अथशास्त्र, कला तथा अन्य—वे सब उसकी शर्तों मे खोजे जा चुके है। वह तुरन्त इनके सम्पक मे आता है। दे ता है कि चेतना के रहस्यवादी तथा वगचरित्री मिथा बिम्बा के बदले उसे चेतना की रासायनिक वज्ञानिक प्रक्रिया के प्रमाणिक नमूने मिल जाते है। इससे उसका निर्वैयक्तिक बाध गहराता है। यह एक स्थिति है, जहा रचनाकार का एक विचारधारा से टकराव होता है। प्रश्न है कि वह कौन सी विचारधारा है? निश्चय ही वह विचारधारा अत्याधुनिक, विश्वसनीय, वैज्ञानिक, मूत तथा मानवीय होगी। वह विचाधारा जो वग विहीन समाज की सरचना का पूरा कायक्रम दगी तथा अब तक के मानवीय अस्तित्वगत सोच का सगति प्रदान करती होगी। वह विचारधारा अनुभव की निर्वैयक्तिक प्रक्रिया म शरीक आदमी के करीब होगी—उसका उत्स एतिहासिक निर्वैयक्तिकता म होगा, वह जा विरोधो की पहचान से जन्मी होगी—समन्वय के बजाय द्वन्द्व स, वह जो गाढे भाव सवेग से रची होगी, वह जा प्रत्येक स्थिति म वैज्ञानिक रह सकती होगी। कारण, काय के रिश्ते स उपजी ज्ञानधारा रचनाकार की विवेक प्रक्रिया का सस्पश प्राप्त करत ही उसके अ तजगत को विश्वसनीय बनान लगती है। यह विचारधारा समकालीन वाह्य वास्तविकताओ को केन्द्र मे रखती है तथा भविष्य के सपना की ओर चेतना तथा रूपा को आकारती ह, इसलिय इसमे जडता की सभावना नही होती। वह तलाश निरन्तर तलाश की आजादी प्रदान करती है। खड से अखण्ड तक का उसका फैलाव अधी स्वीकृति से नही—द्वन्द्वात्मक विधि स होता है। इस लम्बी यात्रा को जो रचनाकार पार करता है—वह तालस्ताय, गोर्की, ब्रेख्त, ज्यूलिस फ्यूचिक, पाब्लोनेरुदा, राहुल, मुक्तिबोध और हरिशकर परसाई होता है। ऐसे लेखक की रचना म बौखलाये आदमी का एकालाप नही होता। वह न तो वयस्क आदमी का गुस्सा होती है और न वक्तव्य ही। विवेक प्रक्रिया के विभिन्न

आसान नही है। मुक्ति व रास्ते की खोज जटिल है तो प्राथमिक काय जटिलता की पहचान है। पहचान के लिये सतही राजनीतिक मुहावरा से काम नहीं चल सकता। इस हेतु वह विवेक प्रक्रिया चाहिए जो गहरे से गहर और परत दर परत धसी राक्षस की पैंतरेबाजी जान सके।

वही कवि मित्र ठीक आगे लिखते है कि यह एक द्वन्द्वात्मक सत्य है कि जो भाषा बदलाव ला सकती है वह छल भी सकती है और विश्वासघात भी कर सकती है।' इसलिये समस्या मात्र राक्षस की साजिश पहचानने की नही, उस मीडिया की खोज भी है जिससे पहचान अभिव्यक्त की जा सके। कविता का मीडिया दूसरी विधाओ की तुलना म ज्यादा गहरा, टिकाऊ, कालजयी और कही कही सार्थक होकर भी अमूर्त हो जाता है। सार्थक और उद्देश्ययुक्त भाषा यदि यही अमूर्त विधा रचती है तो वह अमूर्तता विस्तार और गभीरता को समेटने के कारण है। भाष्य म उसकी अमूर्तता समाप्त हो जाती है। खतरे की इस दुरगी दुनिया म असली कम उस भाषा की खोज है जो कवि के कथ्य स तो जुडी हो सबोध्य से भी उसी अथ म जुड सके। कवि और जनता का यह जोड दुतरफा होगा। पहला जोड जनता से कवि की ओर—दूसरा जोड कवि से जनता की ओर। कवि जनता की आवश्यकताओ से जुडकर सहभोक्ता बनेगा।

सहभोक्ता एक द्वद्वात्मक क्रिया है—कवि के अह तथा जनता की हैसियत के बीच। जनता की हैसियत खोजते समय हैसियत के सचारी औजारो की खोटी नीयत को भापना होगा। अनुभव से गुजरती बाह्य इकाइया प्रकट रूप से उनम अधिक सहायक नही होगी। तब कौन सहायक होगा—इतिहास की वह धारा, जिसने औजारो को ये शक्लें दी है। पुस्तको का भाववाची जनवाची इतिहास रचनाकार की स्मृति के रूप म उपस्थित होकर समकालिकता से जूझता है। चेतना म इतिहास और वतमान वतमान और वतमान विचार और विचार का द्वद्व जायज अनुभव प्रक्रिया को जन्म देता है। जायज अनुभव के लिय खुली आख और खुली जमीन की पुस्तक का टकराव भी होता है। टकराव के कारण टूटत फूटत स्फुलिंगो स आत्मसघष शुरू होता है। जायज अनुभवो की रचना आत्मसघष के बिना नही होती दोनो का अन्त सबध लगातार जारी रहने म है। रचनाकार सतत आत्मसघष के दौरान देखता है कि उसका मैं कही खो गया है। खो जान म भी सुख का अनुभव होता है। वास्तव म यह खो जाना—भागना या पलायन नही। यह दो हस्तियो का आपस म शामिल होना है। द्वैत की समाप्ति का पहला चरण। अखण्ड की ओर प्रस्थान। दुनिया को देखने की खिडकी का खुल जाना। चाहे बाहर देखें या भीतर—पारदर्शी स्थिति का प्रवेश। गहरे भावन म, लगता है कि

बाह्य जगत का सत्य उसके 'मैं' में सिमट गया है। उसका 'मैं' बन गया है। मैं' और बाह्य रचना का घोल उसे ऐसे सपने देता है जैसे सगुण और निर्गुण का भेद मिट गया हो। यही रचनाकार का सजग रचाव है। रचाव में बहुत से वे तत्व जो उसकी सजगता के पूर्व आ गये हैं, यहां आलोचित होते हैं। यही अपनी आलोचना की शुरुआत भी है। रचनाकार पाता है कि जैसे उसका अंतर्जगत विशाल जगत के अंश के रूप में रूपांतरित है। रचाव का आवयविक संगठन उसे पहली बार प्रतीत होता है।

आज के रचनाकार को एक सुविधा है कि उसे वस्तु जगत की पहचान के बहुत से जायज स्रोत उपलब्ध हैं। ये वे स्रोत हैं, जिनकी चाह उसे है। खुली पुस्तक के अध्ययन तथा 'मैं' के निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया में उसे ज्ञान के जिन उपांगों की जरूरत महसूस होती है—इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र, कला तथा अन्य—वे सब उसकी शर्तों में खोजे जा चुके हैं। वह तुरंत इनके सम्पर्क में आता है। देखता है कि चेतना के रहस्यवादी तथा वर्गचरित्री मिथ्या बिम्बों के बदले उसे चेतना की रासायनिक वैज्ञानिक प्रक्रिया के प्रमाणिक नमूने मिल जाते हैं। इससे उसका निर्वैयक्तिक बोध गहराता है। यह एक स्थिति है, जहाँ रचनाकार का एक विचारधारा से टकराव होता है। प्रश्न है कि वह कौन सी विचारधारा है? निश्चय ही वह विचारधारा अत्याधुनिक, विश्वसनीय, वैज्ञानिक, मूर्त तथा मानवीय होगी। वह विचाधारा जो वर्ग विहीन समाज की संरचना का पूरा कार्यक्रम देगी तथा अब तक के मानवीय अस्तित्वगत सोच का संगति प्रदान करती होगी। वह विचारधारा अनुभव की निर्वैयक्तिक प्रक्रिया में शरीर आदमी के करीब होगी—उसका उत्स ऐतिहासिक निर्वैयक्तिकता में होगा, वह जो विरोधों की पहचान से जन्मी होगी—समन्वय के बजाय द्वन्द्व से, वह जो गाढ़े भाव संवेग से रची होगी, वह जो प्रत्यक्ष स्थिति में वैज्ञानिक रह सकती होगी। कारण, काय के रिश्ते से उपजी ज्ञानधारा रचनाकार की विवेक प्रक्रिया का संस्पर्श प्राप्त करते ही उसके अंतर्जगत को विश्वसनीय बनाने लगती है। यह विचारधारा समकालीन बाह्य वास्तविकताओं को केन्द्र में रखती है तथा भविष्य के सपनों की ओर चेतना तथा रूपों को आवारती है इसलिये इसमें जड़ता की संभावना नहीं होती। वह तलाश निरन्तर तलाश की आजादी प्रदान करती है। खण्ड से अखण्ड तक का उसका फैलाव अंधी स्वीकृति में नहीं—द्वन्द्वात्मक विधि में होता है। इस लम्बी यात्रा को जो रचनाकार पार करता है—वह तालस्ताय, गार्की, ब्रेख्त, ज्यूलियस फ्यूचिक, पाब्लो नेरूदा, राहुल, मुक्तिबोध और हरिशंकर परसाई होता है। ऐसे लेखक की रचना में कोरा व्यक्ति आदमी का प्रलाप नहीं होता। यहाँ न तो समग्र आदमी का गुस्सा होता है और न वक्तव्य ही। विवेक प्रक्रिया के विभिन्न

बडावों में ये स्थितिया होती है—रचनाकार रूपा तरण के समय यदा-कदा गुस्से मे आता है, घृणा करता है, वक्तव्य की बेचैनी से तडफडाता है और इस तरह की रचनायें भी लिखता है पर उसकी साधना निरन्तर अपनेपन को माजती है। अन्तत उसका गुस्सा पूरी जनता पर नहीं—चद शोषकों पर होता है। वह गुस्से की रचनात्मक पहल करता है। नमूने के रूप म दो कविताओ के अश—

मुझे वे दिन याद आते है
जब राजा जी के मजाक बारीक हुआ करते थे,
और आज भी वही दौर
लेकिन अब—प्रजा जी के खून मे
यह बारीक जहर उतर गया है
और एक सतही दिलचस्पी की जकड म
सारा देश विचारहीन होता जा रहा है।
(बेचैन जिन्दगी—धूमिल)

य लोग बोलते क्यो नही
य कहते क्या नही अपनी बात / अपने प्रतिवाद
जुबान साबुत है / आख / दात
नमपुट, त्वचा और रक्तवाहिनिया क
क्रियाशील दल ! लेकिन ये बोलत क्यो नही ?
जो कपडे पहने खडे हैं ! अडिग
जो दवाए इन्होने इस्तेमाल की है ! अनवत
जो अन्न इन्होने खाया है ! निस्तेज
व जानत हैं
इन मिश्रधातुओ म ढली प्रतिमाओ को
फावडो का मिट्टी सना तल
फिर भी य बोलते क्यो नहीं ?
थोडा सा खोदने पर निकलते कक्कड जल स्रोत
(सरचना—विजन्द्र)

एक कविता की निगाह सतह मे दिखते सत्य तथा उसस निकलती भाषा म केन्द्रित है। उसम सच्चाई का अधूरापन है। सारे देश को एक साथ विचारहीन कहकर गाली देना मध्यवर्गीय नपुसकता है। यह निषेध का स्वर है, निर्वैयक्तिकता की आशिक यात्रा का परिणाम है। इसका कवि निजी अनुभवों के बलवूत बातें

करता है। उस। अपा अनुभव के विस्तार के लिये दूसरे अनुभवों का सहारा नही लिया। अध्ययन तथा चिन्तन की जडो की ओर वह नही बढा। उसका सवेग ज्ञान के स्तर तक नही पहुचा। दूसरी कविता म रचनाकार की पक्षधरता ही नही, सामान्य जन की अजेय सघर्ष क्षमता को उकसाया गया है। रचना का व्यग्य सामान्य जन को कुरेदे बिना नही रह सकता। सकट झेलने की क्षमता रखने वाली जनता का यह मार्गान्तीकरण है। घात की धार जनता की ओर से शोषकों की ओर मोडी जाती है। एक कविता मे तात्कालिकता तथा दूसरी म आत्ययिक निरन्तरता का बोध है।

यह सही है कि जब कविता मनुष्य को शोषक व्यवस्था से मुक्त कराने का सकल्प लेती है और विवेक प्रक्रिया की निरन्तरता से जुडकर रचना बुनावट तैयार करती है,तो बहुत से भ्रम तथा विवाद हल हो जाते है। वह कविता देश की जमीन मे गहरा रिश्ता रखती है। वह विश्व दृष्टि की ओर अपनी जमीन से होकर जाती है। विश्व दृष्टि भी जमीन से बाहर होने का विश्वास दने के बजाय उसको गहरे से समझने का ज्ञान देती है। राजनीति,साहित्य, सौन्दय के आपसी भेद तब नही रह जाते। वे एक जुटता मे दीप्ति पात ह। इस रचना मे वह झगडा भी नही रहता कि रचनाकार पार्टी के प्रति क्या रवैया अपनाये ? जनतान्त्रिक दल तथा रचनाकार की कल्पना—दानो का उददेश्य एक होता है। दोनो वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार कल्पना और क्रिया का क्रम निभाते है। दोनो का एक दूसरे पर प्रभाव पडता है, गुणात्मक विकास मे सहयोग होता है, भूलो की ओर उँगली निर्देश होता है और इस तरह एक ही उद्देश्य के भीतरी सघष की स्वायत्तता कायम रहती है। उदाहरण के लिय मुक्तिबोध की कवितायें जनता, कवि की आजादी तथा पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता म से किसी को अस्वीकार नही करती—बल्कि नैरन्तय मे ये प्रसग रचना की व्याप्ति बढा देते है। रूपान्तरित रचनाक र के नाते उनकी कविताओ म सायक भाषा का इस्तेमाल होता है। रचनायें चाहे अवादमिक जिज्ञासाओ को पूरा करती हो या त्रिलोचन और नागार्जुन की तरह कायकर्ता को उदबुद्ध करती हो—उनम समझ और उददेश्य का पार्थक्य नही हो सकता। एक कवि जटिलबोध को अभिव्यक्ति की जटिलता म देखता है तो दूसरा उसे सहज बनाकर पेश करता है। उल्लेखनीय है कि नासमझ सहजता, निम्न पूजीवादी गुस्से की सपाटता, वक्तव्य का सरलीकरण तथा गहरे बोध की वापसी मे उत्पन्न सरलता म फर्क होता है। इस अन्तर को समझने के लिये गुस्से के स्तर पर लिखी गयी धूमिल, जगूडी रमेश गौड, वेणु गोपाल की कविताओ म तथा नागार्जुन त्रिलोचन तथा रमेश रजक की रचनाओ म झाँकना चाहिए। सहज अथवा जटिल—दोनो तरह की रचनाओ का असली कम जनता को वैकल्पिक साम्या प्रदान करना होता

है। नयी कविता का दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यही रहा है कि वहा आस्था का अभाव था। गोली-बन्दूक की उछाल पर लिखी कवितायें भी गहरी आस्था का रचाव प्रस्तुत नही करती। मनुष्य को खोखला बनाती कविताओं का कोई भविष्य नही होता। आयातित—विकृत मूल्यबोधों को ओढ लेने पर रचना का विश्वसनीय मुहावरा नही बनता। समकालीन कविता ने मुक्तिबोध की विरासत को आगे बढ़ाने का काम किया है। इस तरह कविता का दायरा बढा है। सौन्दर्यबोध की मूल धारणाओं के आधार पर अनुशासित तथा विस्तारित चेतना की कविताओं में अराजक रोमानियत का खतरा घटा है। रचना के इस क्रम में यह प्रश्न महत्वहीन हो जाता है कि विचारधारा कविता की है या कविता विचारधारा की है। □

यों ही गुजरगे हमेशा नहीं दिन
बेहाली म, तक्लीफ म, घुटन म, ऊबों मे
आयेंगी वापस जरूर हरियालियाँ
घिसी पिटी भुनमी हुई दूबा म

(पहल—नागार्जुन)

कविता अथवा लेखन का यह दूसरा पक्ष है। पहली चार पंक्तियों म व्याप्त सदाय, निराशा और एक नि श्वास के उपरात शेष रह गयी आशा की उद्दाम परिणति अन्तिम दो पंक्तियों मे मुखर हो उठी है जब कवि कहता है—घिसी पिटी भुनसी हुई दूबा म (सम्पूर्ण बर्बादी के बाद भी)—आयेंगी वापस जरूर हरियालियाँ!

यह दो कवियों या दो कविताओं के बीच का फर्क नहीं है वरन दो जीवन दृष्टियों के मध्य चल रहा द्वन्द्व है जिसमे सम्पूर्ण दुनिया, कलाए व आस्थाए बटी हुई है। 'भरने' मे सौन्दर्य अथवा जीवन या कि कविता को देखने, दिखाने वालो की संख्या अधिक हो सकती है लेकिन हम आश्वस्त हो सकते हैं कि सम्पूर्ण तबाही व बर्बादी के बीच भी 'करुणामय/हमदर्द वाली' को खोजने वाली दृष्टि ओझल नहीं हुई है बल्कि हरियालियों के पुनर्आगमन की आशा दृढ से दृढतर हुई है। और इस आशावादी स्वप्न ने पतझर, क्षय व झरन/भरते रहने की हताशा मे खलबली मचा रखी है। नये नये तर्क गढे जा रहे है। बसन्त को कैद करके रखने के जितने भी प्रयास हुए या हो रहे है उन सबके बीच यह अटूट विश्वास तथा जीवनी शक्ति ग्रहण करता जा रहा है। पतझर का भय दिखाकर बसन्त आगमन को न तो रोका ही जा सकता है न उसे स्थगित ही किया जा सकता है।

पतझर, क्षय पतन, ह्रास व 'मनचाही सगति' के अनुचर बसन्त आगमन के प्रति आश्वस्त तथा उसे अन्तत लाने के लिए प्रयत्नशील सघर्षरत जनता को ऐसे भ्रम—

कोई रास्ता कहीं नहीं ले जाता
वापस लौटाता है
उन्हीं तहखानो म
जहाँ चारो ओर लगी हुई
दीमको की कतार है
सीलन है, चूहे हैं जाल है

से न तो डरा सकते हैं, न ही भ्रमित कर सकते हैं व न ही उन्हें अपने अभियान से लौटा सकते हैं। लेकिन ने सभवत ऐसे ही भ्रम फैलाने वाले 'चेतनी अनुचरो'

को इगित करते हुए लिखा होगा— 'जो गुलाम अपनी गुलामी की हालत के प्रति जागरूक नही है और मूक अजागरणपूर्ण तथा अवाक गुनामी म वनस्पति की तरह रहता है, वह ठीक ही गुन म है।' जो लोग पतझर के विरुद्ध बसन्त लाने के लिए निरन्तर सघर्ष मे लगे हुए है वे अपना रास्ता ढूढ चुके है। रही बात तह-खानो की सी यह लडाई लडते हुए वे कहाँ तहखाना के भीतर की जिदगी से बेहतर जीवन जी रहे हैं—सारी लडाई उस बेहतर जीवन के लिय ही तो है? और फिर दीमका, जालो, सीलन व चूहो से परेशानी का सवाल ही कहा शेष रह जाता है जब पतझर व गम हवाओ के थपडो की भयावहता भी उन्ह नियन्त्रित नही कर पायी व लगातार वे एक के बाद दूसरे मार्चे पर जीत हासिल करते जा रह है। इस जीत से बौखलाहट भी, शायद वह कारण है कि जो ह्रास और झरण के सम थका/अनुचरो की सख्या बढा रहा है। किन्तु अपन सघर्षों म जुटी जनता इनकी कोशिशो से नावाकिफ नही है। धूप जो सब का मिल जाया करती थी/अब ऊँचे घरो की छतो पर रोक ली जाती है।' यह जानकारी उसे खूब है।

(फिर यह ठण्ड भी—कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह)

पतझर, ह्रास, झरण व मनचाही सगति के लिये काम करने वाले अनुचरो के भ्रमा, प्रयासो और बरगलाहट के विरुद्ध बसन्त आगमन के प्रति आश्वस्त तथा उसे लान के लिए किय जा रहे सघर्ष सघर्षकर्मियो की पक्षधर कला व कविता ही 'जन-वादी' है। जनवाद इस सघर्षशील जनता के सघर्षो से उभरी वास्तविकता है कोई वायवी या आसमानी फरमान नही। जनवादी कविता क्रान्तिकारी (राजनीतिक) विषय वस्तु और यथासभव अधिक पूर्ण कलात्मक रूप की एकता की दरकार रखती है। कोई कविता अथवा कला, कविता या कला होने से पूर्व किन आदर्शों, जीवन मूल्यो व वर्ग हितो की सजाहिका है—आज यह पडताल आवश्यक हो गयी है। पतझर, झरण, क्षय या ह्रासशील मूल्यो का हित पोषण करने वाली कविता या कला अपनी मानी श्रेष्ठता (जिसकी कसौटी भी उसी वर्ग द्वारा तय होती है) के उपरान्त 'वसन्त-आह्वानी' वर्ग के लिए वरेण्य कभी भी नहीं हो सकती।

पिछली सारी कविताओ पर बहुत सक्षेप म चर्चा उठायें तो प्रगतिवादी दौर से पूर्व प्रसाद, पत महादेवी व निराला की पीढी म, निराला मे उत्तरार्द्ध की रच नाओ मे (खास तौर पर) जनसाधारण के प्रति चिन्ता व पक्ष तो दीखता है लेकिन क्रान्तिकारी दृष्टि के अभाव म वह सब एक 'उदार मानवतावाद' म परिणत हो जाता है। प्रगतिवादी दौर म इस लेखन को सारे विवादो व न्यूनताओ के बावजूद इस दिशा मे एक सक्रिय पहल के रूप मे लिया जाना चाहिए। मुक्ति-बोध न न केवल अपनी कविताओ, कहानियो, आलोचना व डायरी अपितु सभी

तेरान व जीवनगत क्रियाकलापों से इस दिशा में न सिर्फ मजबूत आधार ही तैयार किया बल्कि आने वाले सारे रचनात्मक प्रयासों के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम भी किया।

समाजार्थिक व राजनीतिक अन्तर्बाह्य कारणों, वैश्विक उथलपुथल, कला आन्दोलनों व निर्णय न ले पाने की विवशताओं ने मुक्तिबोध के बाद भरपूर ताकत से साहित्याकाश को धुंधला कर स्वयं का घटाटोप में ढक व्यापक निराशा, आत्महत्या, ह्रास और प्रतिगामिता फैलाने का दुष्प्रयास किया। किन्तु प्रगतिवादी दौर के लेखक ने जिस क्रांतिकारी चेतना के बीज बो दिये थे जिन्हें मुक्तिबोध के समस्त रचनात्मक प्रयासों ने अपने खून पसीने से सींचा उन्हें इस अंधेरे को चीर-कर उगना ही था, वे उगे। और अब वे पिछले डेढ़ दशक की अवधि से पल्लवित पुष्पित अंधेरे का मुंह चिढ़ा रहे हैं। इतने विषम वातावरण में उगाई (फूली फली) फसल के प्रति आश्वस्त ही हुआ जा सकता है। निराशा का कोई कारण नजर नहीं आता। जनवादी कलाओं का यह विरवा हमें अपने संघर्षों के उत्साह से ताजगी देता है।

"क्रांतिकारी इतिहास दर्शन मनुष्यता के विकास की व्याख्या के क्रम में, हमें आश्वस्त करता है कि—ऐसा हो नहीं सकता कि मनुष्य की यह विकास यात्रा निरुद्देश्यता या निरर्थकता में ही समाप्त हो जाये। वह एक निश्चित, सार्थक गन्तव्य तक अवश्य पहुंचेगी।" □ [लुकाच]

सुधीश पचौरी

जनवादी कविता की समस्याएं कुछ पहलू

हमारे यहां का वर्तमान दौर जनवादी क्रांति का दौर है, जिसका बुनियादी कार्यभार पूर्ण जनवादी क्रांति की ओर जाना है। यह मांग आज की वास्तविकताओं की ठोस मांग है, किसी व्यक्ति या दल की मनगढ़ंत कहानी नहीं। हमारे साहित्य की संपूर्ण समस्याएं इसी अपूर्ण स्थिति से उपजती हैं और पूर्णता तक पहुंचे बिना साहित्य संस्कृति अपनी समस्याओं से निजात नहीं पा सकती। यहां हम इस अपूर्ण स्थिति के विभिन्न आर्थिक सामाजिक पहलुओं की ओर जाकर विषयांतर नहीं करना चाहेंगे। सिर्फ साहित्य संस्कृति के स्वरूप विश्लेषण से भी इस अपूर्ण जनवादिता का अहसास कराया जा सकता है।

यह एक आम धारणा है कि आज की कविता [या साहित्य] जनता के बीच नहीं पहुंच पा रही। वह जिन पत्रिकाओं में प्रकाशित होती है वे सौ पचास लोगों तक ही सीमित रह जाती हैं। मगर ऐसा क्या है? क्या किसी व्यक्ति या दल के द्वारा उसे जनता तक पहुंचाया जा सकता है? क्या इस तरह कविता जनता से जुड़ जाएगी? आदि आदि।

कविता और जनता के बीच एक वास्तविक दूरी तो यही है कि कविता कर्म या साहित्य कर्म एक विशिष्ट कार्य बन गया है। यह बढ़ते वर्ग विभाजन और श्रम विभाजन के कारण है। वर्तमान कवि कर्म की प्रक्रिया से यह बात और भी साफ है। अधिकांश कवि पढ़े लिखे हैं और मध्यवर्गीय जीवन स्थिति से संबद्ध हैं। समकालीन कवियों की जीवन स्थितियों की एक सामान्य झलक उनकी रचना प्रक्रिया और जनता में उनकी असाधारण दूरी को समझाने में काफी मदद दे सकती है। आज के अधिकांश नये कवि जो जनवादी आंदोलन का हिस्सा हैं या रहे हैं, ऐसे व्यक्ति हैं जो निम्न मध्यवर्गीय परिवारों से आते हैं, जिन्हें सभी तरफ से आर्थिक और सामाजिक दबावों को झेलना पड़ता है। किशोर जीवन से ही उन्हें एक असुरक्षित भविष्य मिलता है। जब जब वे स्वतंत्र जीवन प्रक्रिया में जीने के लिए आगे आते हैं वैसे वैसे समस्याओं को और भी तीखेपन में महसूस करते हैं।

इनमे से अधिकाश ने अपनी किशोरावस्था से ही अपने परिवार को आर्थिक दबावो से गुजरते देखा है। हमारे लिये इनकी समस्याए ठोस आर्थिक-सामाजिक-नैतिक समस्याए, हवाई या पराई नही हैं बल्कि ठोस और वास्तविक हैं क्योंकि ये समस्याए हमारी भी हैं। इनकी रचना प्रक्रिया इस ठोस और वास्तविक स्थिति से अभिन्न रूप से सबद्ध है।

हर वर्ष मुद्रास्फीति नये टैक्स, घाटे की वित्त व्यवस्था आदि जीवन स्तर को और भी अभाव ग्रस्त बना रहे है। लगातार बढती बेरोजगारी जनता को मुफलिस बना रही है। ये आर्थिक सामाजिक दबाव जिन मूल्यो विचार व्यवस्थाओं तथा आदर्शों को जन्म देते है उनमे सपूर्ण महनतकश जनता घिरी हुई है। इनमे मजदूर वर्ग किसान तथा मध्यवर्गीय तबके सभी आते हैं। इन तबको की सामाजिक स्थितिया इन्हे इन समस्याओ के प्रति प्रतिक्रिया करने को बाध्य करती हैं। मजदूर वर्ग इन सबके मुकाबिले अधिक सगठित है और उत्पादन प्रक्रिया मे निर्णायक भूमिका के कारण कई बार इन दबावो के विरुद्ध सघर्षरत होता है किंतु अभी उसका सघर्ष इतना व्यापक नही हो पाया है कि वह व्यवहारत अन्य वर्गों के व्यापक समर्थन सहयोग को हासिल कर सके।

इन सभी वर्गों-उपवर्गों का एक ओर शोषक वर्गों से अतर्विरोध है तो दूसरी ओर परस्पर अतर्विरोध भी हैं जो इन्हे इनकी ठोस सामाजिक भूमिका प्रदान करते हैं। इस अतर्विरोधग्रस्त स्थिति मे इन सभी शोषित वर्गों की समस्याए कही-कही मिलती जुलती हैं और कही टकराती हैं किंतु अतिम विश्लेषण मे मजदूरवर्ग के वर्गीय हित ही इन सबके हितो को भी समाहित करने की क्षमता रखते हैं।

किंतु अभी अन्य वर्गों को न यह अहसास हुआ है कि उनका असली मुक्तिदाता मजदूरवर्ग है और न बिना वर्ग सघर्ष मे आये इन वर्गों को यह अहसास ही हो सकता है। खासकर हिंदी क्षेत्र मे— जिसमे भारत की लगभग आधी आबादी रहती है—वर्ग सघर्ष का स्तर बहुत ही निर्बल रहा है। इसके भी ऐतिहासिक कारण है किंतु वर्तमान दौर मे हिंदी के क्षेत्रो की जडता धीरे धीरे टूट रही है और विभिन्न तबके सघर्ष के रास्ते पर आते जा रहे है।

हिंदी क्षेत्र का बुद्धिजीवी और उसमे भी साहित्यकार इस सघर्षोन्मुख प्रक्रिया से अब अलग थलग नही रह पा रहा। उसकी जीवन स्थितिया उसे सघर्ष मे झोक रही हैं। उग्रता, बौखलाहट आक्रोश आदि की अभिव्यक्ति इसी प्रक्रिया का प्रमाण है। जिसे हम अकविता का या मोहभग की कविता का दौर कहते है उसमे तथा उसके बाद की कविता मे यह स्वर प्रमुख मात्रा मे मिलता है जो दिशाहीन होते हुए भी अपनी ठोस स्थितियो का एक खास किस्म का प्रतिबिम्बन है।

ध्यान रहे कि समकालीन कवियो मे से अधिकाश ने मोहभग के इस दौर को जिया है तथा आज वे इस दिशाहीन बौखलाहट से दिशा की तलाश मे आकुल

व्याकुल होकर भटक रहे हैं। आज की कविता में क्रांति, रक्त क्रांति, लाल क्रांति लाल सूरज आदि प्रतीकों का पुनरागमन इन कवियों द्वारा दिशा की खोज के शीघ्र प्रयासों का प्रमाण है। जो लिख रहे हैं, जिन पत्रिकाओं में वे छप रहे हैं तथा जहां तक वे पहुंच रहे हैं, वे सभी दिशाभ्रम की एक सतत पीड़ा से व्याकुल लगते हैं।

इनकी कविता इसी पीड़ा की, इसी अकुलाहट की बेधड़क अभिव्यक्ति है। कोई एकदम निराश है और लगभग हरेक चीज पर से उसका विश्वास उठ गया है, कोई रास्ता निकालने के लिए बुद्धिजीवियों का आह्वान करता है, कोई स्वयं कवि को यह काम सौंपता है, कोई कविता में ही सारे काम लेने की कोशिश करता है, कोई संगठित जनता मजदूरवर्ग की पुकार करता है, कोई जनता को उसकी असमर्थता और निष्क्रियता पर फटकार पिलाता है, कोई उसे चेतावनी देता है तथा कोई अपने अंदर मध्यवर्गीय अपराध बोध को गहरे महसूस करता है। समकालीन कविता की अंतर्वस्तु बहुत कुछ इन्हीं शब्दों में रखी जा सकती है। यह भी संभव है कि कोई कवि इनमें से किसी एक स्थिति का ही दुहराव कर रहा हो और यह भी संभव है कि एक ही कवि की कविताओं में इन सभी भाव स्तरों को वक्त-बक्त पर अभिव्यक्त किया गया हो। किंतु यह सच है कि इन भाव-स्थितियों को इतनी बार अभिव्यक्त किया गया है और किया जा रहा है कि कई बार अलग अलग लेखकों की अलग पहचान बना पाना मुश्किल हो जाता है और कई कवियों का एकाध संकलन एक से अधिक भाव भूमियों को नहीं छू पाता और एकरसता, एकांगिता तथा एकाग्रमितता का शिकार मालूम पड़ता है।

इन वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति के लिए ये कवि जिस रूप का चुनाव करते हैं वह भी उनके भाव क्षेत्र की तरह ही प्रायः बंधा बंधाया है। अधिकांश कविताओं का लक्षीभूत श्रोता स्वयं कवि ही लगता है। वह अधिकांश में यथार्थ जीवन के जटिल दृश्यों को प्रस्तुत करने की जगह वस्तु स्थिति के प्रति अपनी तात्कालिक प्रतिक्रियाओं और मन पर पड़े प्रभावों के ऊपरी रंगों को अभिव्यक्त करता है। नतीजा यह होता है कि कहीं हमें वक्तव्य ही वक्तव्य मिलते हैं और कहीं आत्म निवेदन, कहीं कोरे कटाक्ष मिलते हैं और कहीं कोरी शिकायतें, कहीं सीधे-सीधे आस्था मात्र मिलती है और अचानक प्राप्त लक्ष्य प्राप्ति का सुख। इनमें आत्म वक्तव्य के लिये आवश्यक स्थितियां व ब्योरों, आत्मनिवेदन को विश्वसनीय बना सकने वाले प्रसंगों, कटाक्ष व्यंग्य को सार्वजनीन बनाने वाले वास्तविक दृश्यों और शिकायतों को निर्वैयक्तिक बनाने वाले प्रतीकों का निरा अभाव मिलता है। कवि की शिकायत, कवि का कटाक्ष, कवि की क्रांतिकारी आस्था का स्वर, कुछ इस तरह से फूटता है जैसे किसी निर्जन में कोई एक सच्ची बात कहने का प्रयास तो कर रहा हो किंतु सुनने वाला कोई न हो और सुनाने

वाला इससे बेफिक्र अपना राग अलाप चला जा रहा हो। बहुत कुछ 'अरण्य रोदन' की सी स्थिति है यह। उसकी शिकायत, उसके कटाक्ष यह तो अहसास कराते हैं कि आज की व्यवस्था म कोई भी सतुष्ट नही है और एक वास्तविक मुक्ति की छटपटाहट हर कही है किंतु यह नही पता चलता कि इस शिकायत को महसूस करने वाले ठोस मनुष्य कहा है और व इस शिकायत के आगे क्या कर सकते है और क्या क्या कर रहे हैं। इस तरह शिकायते, आक्रोश, क्रातिकारी चेतना और आस्था के स्वर तो सुनाई देंगे किंत इन स्वरो के वास्तविक निर्माताओ की छवि बहुत ही धुधली और वायवीय दिखाई देगी। इसलिये वह स्वर सुनाई पडते हुए भी पूरी तरह सप्रेषित नही होता। हम शिकायत या क्रातिकारी आह्वान की गूज तो सुनते है किंतु वह बहुत शीघ्र ही शून्य म विलीन होती दिखाई देती है। हमे शिकायत सुनाई पडती है किंतु सिफ एक प्राथना पत्र के रूप म जिसम कडी से कडी भाषा मे प्राथना की गई है। हमे प्रतिरोध का स्वर सुनाई पडता है किंतु उसमे प्रतिरोध करने वालो की कतारो की जगह लेखक द्वारा जल्दी म कलम से बनाई गई एक मुट्ठी दिखाई दती है। नतीजा यही होता है कि धूमिल 'कविता श्रीकाकुलम' पढते है और उनके पाठको या श्रोताओ को यथाथ के वास्तविक प्रसगो का परिचय मिलने की जगह कवि का गुस्सा भर मिलता है।

कारण यह है कि आज की वास्तविकताओ से समकालीन जनवादी कविता का अधिकाश प्रेरणा तो ग्रहण करता है किंतु वह उस पर पूरा विश्वास नही करता। वह अपने मनोजगत पर, अपनी सदिच्छाओ और मगलकामनाओ पर अधिक विश्वास करता है अत वास्तविकता स प्रेरणा लेकर वह अपने सदिच्छाओ वाले मगल देश म अपनी कल्पना को छोड आते हैं। वास्तविकता और भाववाद का यह एक अजीब सयोग है। यथाथ का अनुभववाद स यह एक अवाछित किंतु ऐतिहासिक सम्मिश्रण है जो आज की रचना प्रक्रिया का मूल अतर्विरोध है। समकालीन रचना का धनात्मक तथा ऋणात्मक पक्ष (दोनो ही प्रकार के गुण) इसी अतर्विरोध की देन हैं। किंतु यथाथ से जुडने के कारण यथाथ को अपना प्रेरणा केन्द्र अपना केंद्रीय विषय बनाने के कारण समकालीन कविता म इहलौकिकता वगवादिता तथा वास्तविक समस्याओ पर सोचने की प्रवत्ति विकसित हुई है जो समकालीन जनवादी आदोलन का न केवल परिणाम है बल्कि उसकी अभिव्यक्ति भी है और इसी अथ म समकालीन कविता को जनवादी कहा जाता है।

इस साहित्य के इस महान धनात्मक पक्ष को स्वीकारे बिना न तो हम इस टिकाऊ और व्यापक बना सकते हैं और न इसकी कमजोरियो, इसके ऋणात्मक पक्ष को दूर करने के लिये उचित वातावरण प्रदान कर सकते हैं। इस साहित्य की, प्रस्तुत प्रसग म प्रधानत कविता की उपलब्धियो और कमजोरियो का ठोस व गभीर अध्ययन इस वातावरण के निर्माण म योगदान द सकता है।

समकालीन कविता में जन, जनता, आदमी का जिक्र तो है लेकिन वास्तविक जनता का नामोनिशान नहीं मिलता। कविता में प्राय: जनता, जनशक्ति आदि एक भाव या विचार प्रतीक की तरह आती है किंतु वे ठोस व संपूर्ण रूप में नहीं उभर पाती। जब कि जनता के ठोस चित्र उभरने के स्थान पर कवि जनता की उपस्थिति को वायवीय एवं तरल प्रतीकों से अभिव्यक्त करता है। कहीं कहीं कुछ कवियों ने जनता की उपस्थिति के लिए चरित्र प्रधान कविताओं की सृष्टि भी की है जिनमें मोचीराम, बलदेव खटिक आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है। ये कविताएँ तथा ऐसी ही चरित्र प्रधान कविताएँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि सिर्फ भावनाओं और विचारों के आधार पर समकालीन कविता बहुत दिनों नहीं चल सकती। अतः इधर कवियों ने चरित्र प्रधान कविता लिखने के कुछ प्रयोग किए। इन कविताओं का महत्त्व इसी में है कि ये समकालीन कविता के यथार्थ की ओर भी प्राय: रूप में निश्चित करने की रचनाएँ की गवाह हैं किंतु इन कविताओं में चरित्रों के ठोस एवं वास्तविक विकास की जगह, चरित्र कवि के विचारों एवं व्यक्तित्व का प्रक्षेपण मात्र बन जाते हैं। उनकी जीवन स्थितियाँ तथा उनके नाटकीय उद्गारों में पतन हो जाता है। चरित्र वास्तविक जीवन के घटना प्रसंगों या ठोस मूल्य प्रक्रिया का विशिष्ट प्रतिनिधि न रहकर लौट फिर कर स्वयं कवि की प्रतिच्छाया बन कर रह जाता है। जाहिर है कि ऐसी कविताएँ जिस भाववाद के उपचार के लिये शुरू की गई थे अंत में भाववादी गिरफ्त की शिकार हो गई। 'मोचीराम' की जीवन स्थिति तथा उसके वक्तव्य, बलदेव खटिक की जीवन स्थितियाँ तथा उसकी अंतिम भंगिमा के बीच कोई विश्वसनीय तालमेल नहीं बैठता। इन असफलताओं के बावजूद समकालीन यथार्थ को चित्रित करने का इन्हें एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग कहा जाना चाहिए। कविता में इन पात्रों का प्रवेश जनवादी कविता की, एवं अन्य कारण से भी, महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। ऐसे चरित्रों के प्रवेश ने जनवादी आंदोलन की व्यापकता को रेखांकित किया है। ऐसे चरित्र निस्संदेह यथार्थ को प्रतिनिधित्व में चित्रित करने की क्षमता रखते हैं और इनका छिटपुट आगमन यथार्थ की पुनर्प्रतिष्ठा का एक प्रारंभिक उदाहरण कहा जा सकता है।

जाहिर है कि ऐसे चरित्र अपनी अपूर्णता में भी जिस वर्गीय पहचान का संकेत देते हैं उसके आधार पर इन्हें पेटी बुर्जुआ तबकों से संबद्ध माना जा सकता है। मजदूर वर्ग या ठोस किसान जनता के प्रतिनिधि चरित्रों का चुनाव करने की जगह प्रचुरता के साथ पेटी बुर्जुआ वर्ग के पात्रों का चुनाव यही सिद्ध करता है कि इनके अनुभव संसार में मजदूर वर्ग के संघर्षकारी पात्र (जो कि हमारी वास्तविकता का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं) जगह नहीं बना पाते। कदाचित वे इनकी संवेदना को इतना उद्वेलित नहीं कर पाते, जिससे इन्हें लगे कि उनमें इनके भावों

वेगों, मूल्यों को प्रतिनिधि रूप स अभिव्यक्त करने की क्षमता है। जाहिर है कि अपने अनुभवो व सवदनाआ क प्रत्यक्ष वास्तव य रूप म इन कविया को मजदूर पात्रो की अपेक्षा पटी बुजुआ पात्र अधिक 'सगत' तथा 'सभावनायुक्त' लगते हैं। इसका भी एक एतिहासिक कारण है। इन रचनाकारा का अनुभव ससार अभी भी पेटी बुजुआ दुनिया म कैद है इनकी निजी जीवन स्थितियो से लेकर इनके सामाजिक रूप स सक्रिय होन तक का दुनियाक बीच पटी बुजुआ वग विभिन्न रूप म मौजूद रहता है। इसीलिय इस वग क विभिन्न रूपा म से किसी एक रूप क माध्यम स अपन अनुभावित यथाथ को अभिव्यक्त करना, ऐस कवि के लिये स्वाभाविक, सरल एव सभव भी होता है। इसस यह भी सिद्ध होता है कि पेटी बुजुआ वग म भी निठल्ला, श्रम प्रक्रिया स अलग, बोहेमियन और आवारा पात्रो की जगह किसी न किसी रूप म श्रम प्रक्रिया स जुडे, मेहनतकश पटी बुजुआ पात्रो को चुनना 'अकविता' स एक कदम आग की बात है क्योकि य पात्र समाज स च्युत पात्रा के मुकाबिल ठास सामाजिक क्रियाआ स जुड पात्र हैं और इनके प्रवेश से हम अपने यथाथ क कुछ महत्वपूण स्तरो का परिचय मिलता है। कारीगरो, कमचारियो तथा मध्यवर्गीय मा, पिता बच्चो को केन्द्र म रखकर लिखी गई कविता म इन पात्रा का यह पथपुल परिचय जितना स्वागत योग्य है, कवि के निहित मध्यमवर्गीय भावबोध एव दृष्टिकोण के कारण उतना ही आलोच्य है। जहा कही इन पात्रा का इनकी सीमाओ स जबदस्ती बाहर निकाला गया है वहा यह परिचय उतना ही विश्वसनीय रह गया है जितना कि मध्यवर्गीय सशय शीलता की गिरफ्त म रहता है।

इस तथ्य से यह उपयोगी निष्कष निकलता है कि अभी भी हिन्दी के अधिकाश कविया के अनुभव जगत म सवहारा वग और उसकी विचारधारा प्रभावशाली और अतिम रूप स यानी अनिवाय निर्णायक रूप स प्रवश नही कर पाई है। ऐसा नही कि य या एस अनक कवि सवहारा वग की राजनीतिक विचारधारा—मार्क्सवाद लेनिनवाद—स नितात अनभिज्ञ या अपरिचित है और न यह मानना सच होगा कि इनके रचना ससार म मेहनतकश मध्यवर्गीय पात्रो का प्रवश भी सवहारा वग की आज के हमारे समाज म लगातार निर्णायक होती जा रही भूमिका की लबी पृष्ठभूमि के बिना सभव भी रहा होता।

बहुत से लोग जो सवहारा वग के नेतत्व का समाज की मुक्ति के लिए आवश्यक मानत है इस तथ्य स आख नही मूद सकत कि समकालीन कविताआ मे यद्यपि सवहारा वग की क्रातिकारी चेतना स सपन्न चरित्रो व नायको का अभाव है फिर भी सवहारा वग न समकालीन कविता की अतवस्तु मे एक महत्वपूर्ण परिवतन कर दिया है। अनक कविताओ म आने वाली अतवस्तु सशयवादी या पलायनवादी नही है बल्कि आस्थावादी है। लबी कविता मे लाये गए चरित्र सीध

जनता, क्रांतिकारी नेता आदि का प्रतीक होते हैं। हर कविता शोषण की खबर देकर सीधे क्रांति की सफलता की यात्रा का दिखलाती जान पड़ती है।

अगर लू शुन के मुहावरे का प्रयोग किया जाए तो कहा जा सकता है कि हमारे कवि जनता को कुछ इस तरह से पेश करते हैं कि 'उसका मुक्का उसके सिर स बड़ा दिखलाई पड़ता है।

यह क्रांति की भावना स्वय वस्तु स्थिति के बीच से विकसित होती हुई नहीं दिखाई जाती। अस्वाभाविकता अविश्वसनीयता को जन्म देती है। धूमिल स लगाकर बिल्कुल नये नये कवियों की रचना प्रक्रिया की एक आम विशेषता यह है कि ये कवि जिस वास्तविक स्थिति को काव्य का विषय बनाते हैं उस उसकी सपूर्ण जटिलता और विविधता म चित्रित नहीं कर पाते। ये यथार्थ के अदर स उसकी सभावनाओं को निरसित नहीं करते बल्कि यथार्थ की निजी भावना को—अपनी सदिच्छा को अधिक स्थान देते हैं। ये व्यापक सामाजिक स्थितियों यथा मजदूरों किसानों, मध्यमवर्ग के वस्तु जगत को चुनते हैं किंतु उस पूरी तरह प्रस्तुत नहीं कर पात।

पूरी तरह प्रस्तुत न कर पाना' या चित्रित न कर पाना इनकी रचना प्रक्रिया की सबस बड़ी समस्या है। यह इसलिए है कि ये लोग यथार्थ के प्रति बहुत ही भाववादी रवैया रखते हैं। इनके लिए यथार्थ एक ठोस एव स्वत पूर्ण प्रक्रिया न होकर, कोई निष्क्रिय या जड़ प्रक्रिया है जिसम विकास की अतर्निहित सभावनाए नहीं हैं, इसीलिए य लोग उन सभावनाओं का अपनी ओर स प्रक्षेपण कर डालते है। कहना न होगा कि इस तरह अपने नेक इरादों के बावजूद य यथार्थ पर अतत भाववाद का आरोपण कर डालते हैं। इसीलिए इनकी कविता म यक्त जीवन ठोस, हसता रोता जीता जागता जीवन नहीं होता बल्कि किसी काल्पनिक जगत का हिस्सा होता है। यह आस्था भी काल्पनिक होती है (जो भयानक अनास्था के वातावरण म निश्चय ही उपयोगी हो सकती है किंतु इसस आग उसका कुछ महत्व नहीं) क्योंकि इसम कहीं न-कहीं यह आग्रह छिपा रहता है कि वह आस्था, वह आशा वह सक्रमकता उस यथार्थ मे निहित नहीं जिसे कवि ने चुना है। अगर वह यथार्थ जीवन पर विश्वास करता, यदि वह वास्तव म वस्तुवादी होता—यदि वह वस्तुवाद म द्वद्वात्मकता देख सकता तो निश्चय ही उसे अपनी कल्पना का आरोप करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती इसलिए भी इस आरोपित आशावादिता तथा आस्था को सशयवाद के मुका बिल जाग की स्थिति मानते हुए भी इस बात स आखें नहीं मूदी जा सकती कि यह चीज बहुत जल्द ही एक फामूलावाजी का जन्म द सकती है जिसके कुछ चिह्न आजकल दिखलाई पडन लग हैं। मसलन अब ऐसी ही उद्विग्नता, बडबोलेपन तथा रूमान स भरी अनेक कविताए ऐसे कवियों द्वारा भी लिखी जा रही है जो

अभी कल तक अपने संशय और विघ्न ससार म बद थे। ऐसी कविताओ को प्रतिक्रियावादी मच प्रश्रय भी दे रह ह। यथाथ से जरा सा भी मुह चुरान का नतीजा यही फार्मूलाबाजी हो सकती है। भाववाद यथाथ पर विश्वास नही करता। वह उसे सत्य नही मानता। वह तो अपन भावो को वस्तु जगत से स्वतन्त्र-स्वायत्त मानता है और वस्तु जगत को उसका वाहक। भाववाद के सभी सस्करणो म वस्तु जगत का पूण तिरस्कार निहित रहता है। यान्त्रिक वस्तुवाद वस्तु को सत्य तो मानता है किंतु वह उस एक स्वत पूण एव स्व नियमानुशासित प्रक्रिया न मानकर जड तथा वाह्यानियमानुशासित मानता है। यथाथ की चालक शक्ति यथाथ म निहित नही होती बल्कि उसे दिशा दने के लिए बाहर से धक्का आवश्यक हाता है। यान्त्रिक वस्तुवाद की द्वद्वात्मकता को नजरदाज करके उसकी स्वत अनुशासित सभावनाओ पर पूरा विश्वास नही कर पाता और अतत भाववादी हो जाता है।

समकालीन कवियो म से अधिकाश कवि भाववादी, वस्तुवाद तथा यान्त्रिक वस्तुवाद के शिकार हैं। यथाथ के प्रति उनक दष्टिकोण एव रचनागत व्यवहार से यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है। इन कवियो म यथाथ को भाववादी या फिर यान्त्रिक वस्तुवादी ढग से देखने और रचने की स्पष्ट प्रवत्ति मौजूद है। भाववादी दृष्टि कविता मे प्रभाववादी तथा सतही प्रतीकात्मकता पदा करती है और उस नितात आत्मगत बना दती है तथा यान्त्रिक वस्तुवादी दृष्टि कविता मे यथाथ को उसकी प्रक्रिया म न देखकर, उसके सार और सभावनाओ को न देखकर, उसके ऊपरी आवरण को अधिक दखती है तथा पूणता नही द पाती। समकालीन कविताओ मे—जि ह हम जनवादी कविता कहत है—यह प्रवत्ति फिलहाल जारी है। इसी के चलते यह खतरा बना रहा है कि कही यह प्रवत्ति गतिहीन न हो जाय।

अनक कवियो म इस सीमा का स्पष्ट अहसास भी दिखलाई पड रहा है। ऐसी कविताए भी देख । मे आ रही ह जो यथाथ को कविता का सपूण विषय बना रही हैं। किंतु अभी भी इस बढ रही जडता के कारणो पर कवियो की नजर नही गई है।

इसका कारण उसी दष्टि म छिपा है जो यथाथ को या ता सत्य नही मानती या उस निहायत यान्त्रिक तरीक से दखती है। यह दष्टि कविता की रचना प्रक्रिया को पूरी तरह विकसित नही होन दती। यथाथ के तिरस्कार से यथाथ के पूण ज्ञान क तिरस्कार का ज म होता है। इसस कविता क अनिवाय माध्यम—बिम्ब विधान—का भी तिरस्कार होता है। समकालीन कविता म बिम्ब विधान का चौतरफा तिरस्कार इस कविता को यथाथ का कलात्मक वाहक नही बनन दता और इसीलिये न वह यथाथ के बहुरगी और बहुविध चित्र द पाती है और

न ही वह पूरी तरह जनसप्रेष्य हो पाती है।

काव्य के अनिवाय माध्यम के रूप म बिम्ब का यह तिरस्कार समकालीन कविता की दूसरी बडी कमजोरी है जो कवियो की भाववादी तथा यान्त्रिक भौतिकवादी दष्टि का परिणाम है। यथाथ के प्रति गहरा अविश्वास अनिवायत काव्यात्मक सज्ञान म वस्तुजगत की उपस्थिति को अनावश्यक कर देता है। पुराने कविया की काव्यशक्ति का प्रतीक यही बिम्ब विधान रहा है। नागार्जुन या केदार के यथाथ बिम्ब यह सिद्ध करते हैं कि यथायवादी कविता का अनिवाय माध्यम बिम्ब विधान है [इसका अथ यह नही कि प्रतीक या अन्य माध्यम अनावश्यक हैं]।

दरअसल बिम्ब विधान को काव्य की अनिवायता माना गया है और जब भी इसका तिरस्कार किया गया है या अनजाने इसका तिरस्कार हुआ है, तभी कविता की सप्रेषणीयता सीमित हो गई है और वह नितात आत्मालाप और फार्मूलाबाजी का शिकार हो गई है।

बिम्ब विधान को कविता का अनिवाय माध्यम इसीलिय कहा जाता है कि बिम्ब के बिना यथाथ का वास्तविक सज्ञान व प्रत्यक्षीकरण सभव ही नही। उसके पश्चात ही रचना के अन्य उप-तत्त्व यथा प्रतीक सीधे कथन तथा भाषा चमत्कार आते हैं। यथाथ का पूर्ण आग्रह करने वाले कवि बिम्ब को अपनी रचना का अनिवाय माध्यम मानते रहे हैं। यदि कविता मे कोरे सिद्धात कथन हैं, वक्तव्य हैं या नीतिवाक्य हैं या फिर मात्र प्रतीक है और वे बिम्ब पर आधारित नही, तब उस कविता का सप्रेषण क्षेत्र स्वय ही सकुचित हो जायेगा।

यह एक सामान्य सी बात है फिर भी प्रस्तुत प्रसग म इसे व्याख्यायित करना आवश्यक है। जिस तरह कवि की सज्ञान प्रक्रिया वस्तु जगत के उसके वास्तविक अनुभवो—वस्तु के प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभावो तथा उसके मस्तिष्क पर पड़े प्रतिबिंबो तथा रिफलक्सो—पर आधारित होती है उसी तरह जनता के विभिन्न वर्गों मे स्थित व्यक्तियो के सज्ञान की प्रक्रिया घटित होती है। अधिक तीक्ष्ण सज्ञान व प्रत्यक्षीकरण क्षमता विकसित करके कोई भी व्यक्ति अपने अदर कलात्मक क्षमता विकसित कर सकता है। जब हम [साहित्यकार की हैसियत से] जनता की चेतना को अधिक ऊपर उठाने की बात करते हैं उसे सचेत करने की बात करते हैं तो अपनी रचना के माध्यम से उस जनता के—जनता म व्यक्ति व्यक्ति के—वस्तु जगत के सज्ञान को और भी तीक्ष्ण, सवेदनशील तथा सपूर्ण बनाने की बात करते हैं। हमारा जनता म प्रतिबद्ध होने जनहितो के पुरोधा होने, तथा क्रातिकारी चेतना का कलात्मक वाहक होने का अथ यही होता है कि हम जनता को—जनता के व्यक्ति व्यक्ति को—उसकी चौतरफा जिन्दगी का अधिक गहरा तथा ठोस साक्षात्कार करायें जिसस कि वह उसे समझ कर, उसके

वास्तविक रूप को समझकर (जिस वास्तव रूप को छुपाने के लिये शोषक शासक वर्ग, पूंजीवादी-सामंतीवर्ग अपने विभिन्न विचारों तथा विचारधाराओं और कलात्मक साधनों का इस्तेमाल करता रहता है और उस पर पर्दा डालने में काफी हद तक सफल रहता है] उसे बदलने का प्रयास करने के लिये तैयार हो अपनी भूमिका को समझ सके और इस तरह वर्गसंघर्ष को सचेत रूप से ग्रहण कर सके एवं नेतृत्व दे सके। बिना इस प्रक्रिया में उसके जाय कोई भी क्रांति संभव नहीं होती। इस प्रक्रिया का सचेत हिस्सा बनने के लिये रचनाकार समेत समस्त जनता के संज्ञान का वैज्ञानिक होना, उसका विकसित होना आवश्यक है।

इस हेतु यह एक बुनियादी जरूरत हो जाती है कि हमारा साहित्य जनता के संज्ञान को और भी वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित बनाये। शिक्षा से वंचित एवं साहित्य संस्कार से अपरिचित जनता की संज्ञान प्रक्रिया किसी भी प्रकार से रचनाकार से निर्बल नहीं होती बल्कि कई बार तो साहित्यकार के मुकाबले अधिक सीधी और ग्रहणशील होती है। इसी शोषित, उत्पीडित और दलित जनता की ठोस जीवन स्थितियां, इसी अपढ़ और जाहिल सी दीखनेवाली जनता का, इसके एक एक व्यक्ति का संज्ञान ठोस जीवन स्थितियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं से सचेत अचेत रूप में प्रभावित रहता है और उनकी संवेदन क्षमता अधिक प्रत्यक्ष तथा तीखी हुआ करती है। हमारा रोजमर्रा का जीवन इस बात का प्रमाण है कि आम मेहनतकश जनता में शोषण, उत्पीडन या दमन के प्रति कोई सतही या तात्कालिक क्रोध नहीं दिखलाई पडता। वे प्रायः छोटे छोटे दुखों से विचलित नहीं होते और न ही वे अचानक क्रांतिकारी बना करते है। मजदूर से अधिक कौन महसूस कर सकता है कि उसका शोषण कितना हो रहा है और उससे अधिक कौन यह जान सकता है कि वह इस मशीन के पीछे लगी सबसे बडी शक्ति है और उसके बिना यह सब नहीं चलता। फिर भी उसकी चेतना पर शासक वर्ग के विचारों का इतना गहरा अवलेप चढ़ा रहता है कि वह यह सब जानते हुए भी अनजाना बना रहता है और बहुत धीमी किंतु ठोस रफ्तार से संगठित होता रहता है। इस समूची प्रक्रिया के पीछे उसकी बढ़ती हुई सचेत भूमिका रहती है फिर भी उसकी संगठित भूमिका भी उसके गुस्से को इतना सतही और ऊपरी नहीं होने देती। किसी हडताल या आंदोलन में शामिल मजदूरों की चेतना अपने संघर्षकारी अनुभव से वर्ग चेतना के स्तर पर थोडी आग आती है और यही आग आनेवाली चेतना उनके गुस्से को ऊपरी गुस्सा नहीं रहने देती।

पूंजीवाद के आरंभिक दौर में जब सामंतवाद टूट रहा था और देहात का किसान उजडकर शहर में मजदूर बन रहा था, तब यह प्रवृत्ति सामने आई थी कि मजदूर वर्ग उसी मशीन से घृणा करता था जिस पर उसे काम करना होता

था। यह मजदूर पूजीवादी मार से अपनी हस्त कारीगरी के उजडने के लिये मशीना को ही जिम्मेदार मानता था। अत उस वक्त मजदूरो मे मशीन विरोधी और अराजकतावादी प्रवत्तिया भी पैदा हुइ किंतु यह प्रवत्ति बहुत दिना के लिय नही आई थी और अत म उसी अनुभव ने मजदूरो को एक क्रातिकारी रूप म सगठित किया।

आज का हमारा कवि जब मजदूर वग की बात करता है तो वह उसकी प्रौढता पर शका करके, उसकी चेतना पर अविश्वास करके उसे उपदेश पर उपदेश इसीलिय दिलाना चाहता है क्योकि वह मजदूर वग को एक स्वतत्र शक्ति के रूप म स्वीकार नही कर पाता। बहुत से कवि जो माक्सवाद म अप आस्था व्यक्त करते है, वे भी कही न कही इसी मध्यवर्गीय दभ के शिकार हैं वास्तविकता तो यह है कि मजदूर वग का गुस्सा न तो इतना सतही होता है और न वह इस प्रकार के चित्रण से प्रभावित ही होता है। उसे अपने जीवन के गहरे चित्र ही प्रभावित कर सकते हैं—वे चित्र जिन्हे वह देखता है किंतु समझ नही पाता। आम मजदूर किसान जनता के अनुभव उस शोषण उत्पीडन तथा नारेबाजी को कही अच्छी तरह जानते समझते हैं जिसे कवि अपने काव्य म एक फनफनाते गुस्से के रूप मे चित्रित करता है। अगर इन समकालीन कवियो द्वारा दिये जा रहे जनता के क्रातिकारी चित्रो पर विश्वास कर लें तो ऐसा लगता है कि क्रातिकारी परिस्थितिया एकदम तैयार हैं और यदि कोई 'सही नेता' मिल जाय तो सब कुछ हो सकता है। इसीलिय इन कवियो म उन नेताओ के प्रति, उन दलो के खिलाफ शिकायत भी मिलती है जो मजदूरो को सगठित करने म सलग्न है। किंतु क्या वाकई मजदूर वग क्राति के लिए तयार है और क्या किसी एक नेता के सही होने से क्राति हो जायेगी? क्या वास्तविक जीवन मे भी यही स्थिति है?

जी नही। वास्तविकता इससे एकदम भिन्न है। मेहनतकश जनता शोषण, उत्पीडन और दमन के इतने गहरे गद गुबार मे दबी ढकी है कि उसकी चेतना बहुत धीमी गति से बढती है। वह अभी तक अपनी आर्थिक लडाइया ही लडती रही है और अभी तक राजनीतिक सवालो पर स्वतत्र पहलकदमी की स्थिति म नही आई है। इसका सबसे बडा प्रमाण तो यही है कि आपातकाल के तानाशाही हमले का कोई व्यापक व सगठित प्रतिरोध वह नही कर पाई और न ही ताना-शाही शक्तियो का सीधा विकल्प बन पाई। जाहिर है कि हमारी मेहनतकश जनता—हमारा अगुआ मजदूर वग अभी भी अपनी स्वतत्र भूमिका को, क्रातिकारी भूमिका को पूरी तरह समझ नही पाया है हालाकि उसके क्रातिकारी दल सगठन बने तथा बढे है किंतु अभी भी वह एक स्वतत्र शक्ति के रूप म विकसित नही हो पाया है।

मजदूर वग का एक भ्रम टूटता है तो दस नये भ्रम उसमे पैदा कर दिये जाते हैं। हालांकि व्यवस्था का आर्थिक सकट मेहनतकश जनता के भ्रमो को क्षार क्षार कर रहा है किंतु शासक भी नये नये भ्रम पैदा कर रहा है। शासक वग की विचारधारा कितनी सशक्त है इसका प्रमाण इससे अधिक और क्या होगा कि हमारे यहाँ भाववादी विचारधारा के हजारो रूप और प्रतीक जनता के हृदय मे घर किये हुए है। आन्दोलन के दौरान मेहनतकश जनता जो चेतना प्राप्त करती है वह इस भाववाद के चौतरफा जाल के कारण भोथरी तथा कुद हो जाती है। हमारे देश मे आज भी नित नये भगवान अवतार लते है, भाववाद आध्यात्मिकता, धर्माधता, जातिवाद, रूढिवादी विचार तथा भाग्यवाद आदि जनता के बीच जिस मूल्य व्यवस्था को जन्म देते है और आधुनिक रुग्ण पूजीवाद जिस अमानवीयता पतनशील व्यक्तिवाद तथा स्वाथपरता को जन्म देता है, वह जिस चेतना ससार को जन्म देता है वह इतनी मजबूत जकडबदी वाला है कि तकवाद की, वस्तुवाद की और क्रान्तिकारी सिद्धातो के उन कल्पित प्रहारो की उन्हें कोई परवाह ही नही जो आज के समकालीन कवियो की कविताओ द्वारा हो रहे है।

समकालीन कविता और यथाथ के बीच यह एक वास्तविक दूरी है इसीलिये उसम सच्चे जीवन चित्रो का—ऐसे चित्रो का जो जनता के गलहार बन सके—अभाव है।

इस भ्रम जाल मे फसी जनता की मुक्ति के लिए—इसे सचेत करने के लिये ठोस चाक्षुप चित्र चाहियें। अपढ जनता को भाषा नही चित्र चाहिए—ऐसे चित्र जिन्हे वह देख सके और देखकर समझ सके। उस साहित्य से दृश्य श्रव्य विषय की आवश्यकता है। जनता से जुडने का अथ है कि जनता को दृश्य श्रव्य चित्र दिये जायें। इसके लिए जब तक उसके सामने उसके जीवन के हजारो हजार कोणो से वास्तविक रगो वाले चित्र नही दिये जाते, तब तक वह आपकी कविता को छुएगा भी नही।

इसीलिये कविता को वे रचना पद्धतिया अपनानी पडेंगी जिनसे जनता को सम्मानित किया जा सके। बिम्ब विधान अनेक ऐसी प्रत्यक्ष सज्ञान की पद्धतियो मे स एक महत्वपूण पद्धति है।

आम मेहनतकश और अपढ जनता की सज्ञान प्रक्रिया चाक्षुप एव ठोस वस्तु स्थितियां स जितना प्रभावित होती है उतना कोरे आदर्शो और उपदशो से नहीं। उसे ठोस वस्तु स्थितिया और ठोस आह्वान की दरकार होती है। बिम्ब विधान कविता का एक ऐसा ही महत्वपूण माध्यम है जिसके जरिए उसे पढने या सुनने वाला अपने सज्ञान म सवद्धन महसूस करता है और अपने अनुभव जगत का अभिन्न हिस्सा मानकर उसे स्मरण मे रखता है।

भाववाद के मुकाबिले वस्तुवाद के विकास के लिये वस्तुस्थितियो की

मत्यता प्रमाणित करनी आवश्यक होती है। बार बार सिद्ध करना कि
सत्य है कि इसका एक गतिविज्ञान है कि मनुष्य और उसकी चेतना इ
का विकसित प्रतिरूप है, कि इसके नियम ज्ञातव्य हैं कि इस नियमो के
अनुशासित किया जा सकता है और कि जीवन की सम्पूर्ण लीलाओ का
और कर्त्ता धर्ता स्वय जीवन है—कोई भी बाह्य और काल्पनिक सत्ता
नही रखती—इन मामूली और आरम्भिक चीजो का प्रसार करना
करना कि वे विश्वसनीय है और इसे एक सुगठित विचार व्यवस्था म बद
वस्तुवाद के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य है। इसके लिए मनुष्य और
नित नये रूपो को ग्रहण करना एव व्याख्यायित करना होगा। इसम व्य
मनोजगत और उसके विभिन्न स्तर भी होगे और बाह्य जगत की स्थिति
ठोस वस्तु रूप भी होगे हजारो हजार पहलू होगे हजारो हजार तरह
जायेंगे तभी व वस्तु जगत के प्रति लोगो मे प्रचारित उदासीनता को दूर
और स्वस्थ मानवीय इहलोकवाद का प्रसार करेंगे और इस लोक के
अपने भाग्य का निर्माता होने का आत्म विश्वास पैदा करेंगे।

जिस विचारधारा न इस जगत को असत्य सिद्ध किया है और हजार
से इस जगत से उसका ध्यान हटाकर किसी 'परलोक' पर टिकाया है उसन
को स्वय अपने विपरीत खडा कर दिया है। वस्तुवाद का पहला काम उस अ
म जमीन पर पैरो के बल उतारना है। इसके लिए बार बार वस्तु जगत
विश्वास को जगाना होगा। बिना वस्तु जगत की मत्यता प्रमाणित किय यह
नही। इस सत्य को जन ग्राह्य बनाने के लिए यथार्थ की बहुविध प्रस्तुति
अभिव्यक्ति कितनी आवश्यक होगी—यह स्वत स्पष्ट है। इसीलिए
प्रसार म यथार्थ के बहुविध एव बहु आयामी सच्चे चित्रो की आवश्यकता हो
कविता म इस लक्ष्य की पूर्ति म बिम्ब विधान अनिवार्य होता है और उ
मे चरित्र विधान।

समकालीन कविताओ म उन कवियो की भी अधिकाश कविताओ मे f
हम जनवादी विचारधारा एव मूल्यो का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि
और जो आज के सबसे सशक्त स्वर है—बिम्ब के रचनात्मक उपयोग के
उदासीनता एव उपेक्षा का भाव द्रष्टव्य है। इसीलिए उनकी अधिकाश कवि
म एकरसता एव एक फार्मूलाबाजी सी प्रतीत होती है।

यहा बिम्ब विधान को इसलिए आवश्यक माना जा रहा है क्योंकि वह का
प्रक्रिया का अनिवार्य तत्व है—वह कविता की प्रकृति म ही निहित है और उ
आवश्यक औजार है। कविता के अन्य औजार यथा प्रतीक विधान या वक्र
या टिप्पणी या अन्याचित विधान आदि सभी तभी स्वाभाविक एव उपयोगी होते
जब वे बिम्ब विधान की कीमत पर न आकर, उसके लिये आते हैं।

पिछले वर्षों म कविता म बिम्ब विधान की जगह सपाटबयानी' पर जोर हुआ। छायावादी कविता मे विम्ब विधान मे बढे बिम्बवाद का प्रतिकार करने के लिए प्रगतिवाद न बिम्बवाद को पहली बार एक अनिवाय औजार भर माना जब कि बिम्बवाद कविता मे बिम्ब को औजार मानने की जगह उसे ही रूपवादी काव्य लक्ष्य मानने लगा था। इसीलिए प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कवियो मे बिम्ब विधान का सफल उपयोग देखने को मिलता है और इमीलिए नागार्जुन या त्रिलोचन या केदार या शील के सामन सप्रेपण की दुविधा नही आती।

कालान्तर मे जब नई कविता के एक हिस्से न इतिहास विरोधी एव भाव वादी दष्टि को अपना आधार बनाया तो वस्तु जगत को नकारन के साथ माथ वस्तु जगत के कलात्मक प्रतिबिम्बन के औजारो को नकारने की प्रवत्ति को बढावा मिला और आत्मालाप, आत्मकथन तथा आत्मरदन के लिए वक्तव्यात्मक या बिम्ब क अन्दर बिम्बात्मकता की जगह प्रतीकात्मकता अधिक लायी जाने लगी। अज्ञेय की कवितायें ठोस बिम्बा के स्थान पर वायवीय कलावादी बिम्बो का अधिक आग्रह करन लगी। मुक्तिबोध ने इसी के प्रतिकार के रूप म, बिम्ब विधान एव प्रतीक विधान के इस अनावश्यक विरोध के खिलाफ एक ऐसी रचना पर जोर दिया जिसम ठोस बिम्बो के माध्यम से जीवन स्थितियो का साक्षात्कार किया जा सके तथा प्रतीक आदि उसके सहयोगी बन सकें। मुक्तिबोध की अपनी कविता एमें प्रतीको या वक्तव्यो की व्यवस्था नही करती जो हमारे सज्ञान को बढ़ने से रोकें और किसी रहस्यलोक मे प्रक्षिप्त करें बलिक मुक्तिबोध की कविता जीवन जगत के सज्ञान को और भी तीव्र तथा सघन करने के लिए बिम्बो तथा प्रतीको का उपयोग करती है। मुक्तिबोध न जटिल यथाथ स्थितियो को उनकी सम्पूणता मे ग्रहण करने का प्रयास किया और इसालिए वहा लम्बे वक्तव्य भी ठोस स्थितियो के बीच जन्म लेत हैं और इसीलिए उनमे पूण नाटकीयता रहती है। मुक्तिबोध के बिम्ब तथा प्रतीक उनकी कविता को और भी सम्प्रेषणीय बनाते हैं। जो विद्वान मुक्तिबोध की कविता को कठिन मानते हैं वे इस तत्व को तो नही ही समझते साथ ही कहा न कही अपन अनुभववाद का आग्रह लिए रहत हैं और ठोस बिम्बो को पूरे आयामो म उभरते देख विचलित हो जाते हैं।

नई कविता के उत्तरार्द्ध मे जब कविता म सपाटबयानी का जोर बढा तो उसके पीछे अनुभववाद तथा प्रभाववाद के क्षरणशील प्रभाव कायरत थे। इसीलिए कविता म अतिसरलीकृत टिप्पणियो की भरमार होने लगी। आरम्भ म इस तरह कुछ तीखी टिप्पणियो न नई कविता के प्रतीक जगत को उद्भिन्न कर दिया किन्तु अतत ये टिप्पणी वक्तव्यबाजी और स्वगत कथन आदि ठोस जीवन से बहुत दूर चले गए और इस तरह कविता प्रक्रिया नितान्त अर्थों मे 'आत्मगत' हो गई। अनेक आलाचको न इसे इस काल की निरपक्ष उपलब्धि माना। उन्होन इसम

निहित काव्य प्रक्रिया के सहकारात्मक तत्त्व को अनदेखा कर दिया जो कविता को जीवन की वास्तविकता का सम्मान कराने वाली क्रिया सिद्ध कर सकता था। जगत के सम्मान के प्रति इस तिरस्कारात्मक और सहकारात्मक दृष्टिकोण का चरम विकास अकविता नामक क्षुद्र आन्दोलन में जाकर देखने को मिलता है। अकविता ने आलोचकों ने इस तत्त्व को पहचानकर भी इसे नजरअन्दाज किया और कविता पर ऐसे व्यंग्य के ठप्पे लगा दिए जिनसे घबराकर कवि रचनाकार कविता में अधिक उपयोगी औजारों की ओर भी उपयोगी बनाने की जगह सीधे वक्तव्यबाजी को ही कविता मानने लगे।

समकालीन कविता के अधिकांश हस्ताक्षरों के काव्य संस्कारों पर अभी भी इसी प्रकार के संस्कार हावी लगते हैं जो उन्हें यथार्थ के बहुविध चित्रों का प्रतिबिम्बन करने के लिए सक्षम नहीं होने देते। जनवादी आन्दोलन के नये उभार को जिस यथार्थवादी काव्य पद्धति की दरकार हो सकती है वह इन संस्कारों के चलते प्राप्त नहीं हो सकती। ये संस्कार मूलतः भाववादी दृष्टि और टटपुंजिया मनोवृत्ति की अन्तर्मुखता की उपज हैं जो जनवादी आन्दोलन की धार को तीक्ष्ण बना सकने की जगह और भी कुन्द करते हैं।

यथार्थ चित्रण की आवश्यकताओं और इन संस्कारों के बीच विरोध है। इन संस्कारों के चलते यथार्थ अपने नवीन नवीन रूपों में अभिव्यक्त नहीं हो सकता क्योंकि ये संस्कार यथार्थ के निरंतर परिवर्तनशील रूप को वहन करने के लिए आवश्यक प्रयोगों की इजाजत नहीं देते। सपाटबयानी या वक्तव्यबाजी वास्तविकता का अमूर्तन अधिक करता है। वह हमारे सम्मान का विस्तार करने की जगह उसे संकुचित करती है। समकालीन कविता में आम बोलचाल की भाषा के बावजूद सम्प्रेषण क्षमता का न होना इन्हीं संस्कारों—सपाट बयानी आदि के नकारात्मक प्रभावों का द्योतक है।

इस प्रकार समकालीन कविता में सम्प्रेषण की समस्या सिर्फ भाषा की न होकर वस्तु सम्मान विरोधी दृष्टि के प्रभावों से जन्मी है और इसीलिये भाववाद पर वस्तुवाद की निर्णायक विजय ही समकालीन रचना की इस समस्या को समाप्त कर सकती है। इस संघर्ष में वस्तुवाद जिस यथार्थ की मांग पेश करता है वह किसी एक विशिष्ट रूप या आकार वाला नहीं हो सकता। यथार्थ के अनंत रूप व आकार उसकी सतत परिवर्तनशील प्रकृति अंतर्गत एवं बाह्यजगत के अनेकमुखी चित्र ही इस वस्तुवाद को विजय की ओर ले जा सकते हैं। यथार्थवाद वस्तुतः सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर आवश्यक वस्तुवाद की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होता है इसलिये उसका कोई एक स्थिर रूप या आकार या क्षण नहीं हो सकता। जनवाद का पूर्ण विकास इसी यथार्थवाद के पूर्ण विकास पर निर्भर करता है और जनवाद की पूर्णता को संभव बनाता है।

इस प्रकार ग्मी ूादोलनात्मक एव आह्वानात्मक कविता भी, जो जनता को सघष की प्रेरणा ेती है या बुलावा देती है, यथाथ का ही प्रतिबिंबन करती है और वे कवितायें भी जो किसी युवा के मन म फस्ट्रेशन और आक्रोश को अभिव्यक्त करती हैं वे भी यथाथ का ही प्रतिबिंबन करती ह। एक वास्तविक प्रेम कविता भी उतनी यथायपरक हो सकती है जितनी कि एक हडताल पर लिखी गई कविता। देखना यह चाहिये कि जिस प्रेमभाव को कविता म लाया गया है उसका हमार यथाथ से क्या रिश्ता है और वह उस यथाथ का वास्तविक प्रतिबिंब है या नही। इसी तरह आदोलनात्मक कविताआ पर नाक भौं सिकोडने की जगह यह देखा जाना चाहिये कि क्या वे वगसघप का वास्तविक चित्रण कर पा रही हैं या नही।

जनवादी क्राति एक विशाल एव जटिल प्रक्रिया है जिसकी मुख्य दिशा इजारेदार पूजीवाद, सामतवाद व साम्राज्यवाद के खिलाफ एक ऐसी जनवादी व्यवस्था की स्थापना है जो समाजवाद का प्रवेश द्वार बन। इस क्राति का सार यह बताता है कि इस काम को बिना किसानो तथा मध्यमवग के वास्तविक सहयोग एव मदद के अकेला मजदूर वग पूरा नही कर सकता। किंतु हमार बहुत स साहित्यकार मित्र इस मम का पूरी तरह हृदय मे नही बिठा पात। वे यह नही समझ पात कि वतमान दौर म जनवादी क्राति का मुख्य प्रहार सामतीय शोषण स पूण मुक्ति के लिये हाना चाहिये। उत्पादन सबधो मे सामतीय शोषण का अथ है भू दास व्यवस्था। इस भूदास व्यवस्था को समाप्त करने के लिये जमीदारी का नितात निर्मूलन आवश्यक है। हमारे देश मे जमीदारी व्यवस्था का पूजीवाद से चोली दामन का साथ है इसलिये हमारे समाज मे स्थिति और भी जटिल एव कठिन हो गई है। यह काम सिफ कानून नही कर सकत बल्कि स्वय किसान जनता ही इस काम को कर सकती है किंतु वह भी बिना मजदूर वग के सफल नतृत्व के यह काम नही कर सकती। मध्यवग भी जनवादी अधिकारो की रक्षा अकेले नही कर सकता। जनवाद की हिफाजत तथा उसका पूण विकास मजदूर वग के नेतत्व मे समूची शोषित जनता की एकता से ही सभव है।

किंतु यह एकता एक निहायत कठिन एव जटिल प्रक्रिया है। पूजीवादी एव सामतीय व्यवस्था का गठजोड न कवल जनता को जीवन स पराङ्मुख करता है बल्कि वह उन्ह धम, जाति, भाषा के नाम पर विभाजित भी करता है। आधुनिकतावादी प्रवत्तिया जीवन स पलायन पदा करती हैं। इन वर्गों को सुलाये रखना इन्हे दिग्भ्रमित करना तथा विभाजित करना शोषक शासक वग बडी सफलता के साथ करता रहता है।

फल यह है कि हमारी जनता का सतान एकदम कुद कर दिया गया है। उसे जीवन म इतना शोषण और धोखा झेलना पडा है कि अब किसी भी सुधार मे

उसका विश्वास नहीं रह गया। जीवन जगत मात्र से उसका विश्वास उठा लिया गया है। उस जीवन से घृणा करना सिखाया गया है। उसमें आत्म संहार के विचार पनपाए गए हैं। उस जीवन की शिक्षा नहीं दी गई। उस जीवन पर विश्वास नहीं कराया गया। जो संसार उसके चारों ओर है वह उसे एक रहस्य लोक के रूप में समझाया गया है। कार्यकारण संबंध को छोड़, समस्या को ईश्वरी विधान कहकर समझाया गया है। शहरी जनता में रूढ़िवादिता, अकर्मण्यता, निष्क्रियता, अवसरवादिता, छल, फरेब धोखा, प्रतिहिंसा, परपीड़न और जटिल व्यक्तिवाद के भाव इतने कूट कूटकर भर दिए गए हैं कि वह अपने जख्मों को भी जख्म नहीं समझती। ग्राम्य जनता में अशिक्षा, अंधविश्वास इतने मजबूत हैं कि वे किसी भी नये ज्ञान विज्ञान को भी चमत्कार की तरह देखते हैं। भाववाद के हजारों हजार रूप इन सभी मूल्यों को औचित्य प्रदान करते हैं। यह भाववाद जनवादी क्रांति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा है। वस्तुवाद जनवादी क्रांति की सांस्कृतिक आवश्यकता है इसीलिये ऐसा साहित्य जो जनता को परलोक की जगह इहलोक में लाये, वही जनवादी क्रांति का वाहक हो सकता है और जाहिर है कि यह यथार्थवादी साहित्य जितना विविध तथा जितना वास्तविक होगा—वस्तुवाद भाववाद को उतनी ही अच्छी शिकस्त दे सकेगा।

अपढ़, काहिल और अपने जख्मों को अंधेरे में न पहचाननेवाली जनता का जीवन लगातार उसे अपनी वास्तविकता को पहचानने की जरूरत महसूस कराता है। जो लोग सर्वाधिक शापित दमित होते हैं, उनकी जीवन स्थिति उन्हें इस बात के लिए बार बार तैयार करती है कि वे उसे समझें तथा उसे बदलें। साहित्य इसी प्रक्रिया में सामाजिक परिवर्तन का औजार बनता है और इसीलिये यथार्थ के सज्ञान पर उसे बार बार जोर देना चाहिए।

समकालीन कविता सच्चे अर्थों में जनवादी क्रांति की विशाल प्रक्रिया का तभी सशक्त हिस्सा बन सकेगी जब वह उन रूपों और विषयों का चयन करे जो जनता में वस्तु जगत के सज्ञान को और भी व्यापक बनाए और उन्हें उनके भ्रम जाल से मुक्त करने में मदद करे।